

तिरुपति बालाजी डेवलपर्स प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य

बनाम

बिहार राज्य एवं अन्य

21 अप्रैल, 2004

[आर. सी. लाहोटी और अशोक भान, न्यायमूर्तिगण]

भारत का संविधान, 1950:

अनुच्छेद 124 और 129 - सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना - अभिलेख न्यायालय - सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय - दोनों के बीच संबंध- अभिनिर्धारित: सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों अभिलेख न्यायालय हैं और संवैधानिक रूप से एक दूसरे से स्वतंत्र हैं - उच्च न्यायालय, सर्वोच्च न्यायालय के 'अधीनस्थ' न्यायालय नहीं है - अपीलीय क्षेत्राधिकार के संदर्भ में, उच्च न्यायालय एक अधीनस्थ क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है - अनुच्छेद 139-ए, 141 और 144 उच्च न्यायालयों पर सर्वोच्च न्यायालय को एक बढ़त देते हैं, और संवैधानिक पदानुक्रम में एक श्रेष्ठ स्थान प्रदान किया जाना करते हैं - हालांकि, अनुच्छेद 226 और 227 के संदर्भ में उच्च न्यायालय एक बड़े क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हैं-संवैधानिक संस्थाएं होने के नाते, सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय को गरिमा और शिष्टाचार का पालन करते हुए एक दूसरे के साथ व्यवहार करना चाहिए - न्यायाधीशों को एक दूसरे की आलोचना नहीं करनी चाहिए - इससे किसी भी विचलन को अपीलीय मंच द्वारा गरिमा और सम्मान के साथ ठीक किया जाना चाहिए, न कि कठोर आलोचना के माध्यम से - सर्वोच्च न्यायालय अपने अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग में निर्देश जारी करते समय, सावधानीपूर्वक ऐसे 'निर्देशों' को जारी करने से परहेज करता है और इसके बजाय वैकल्पिक और विनम्र अभिव्यक्तियों का उपयोग करता है।

अनुच्छेद 136 - प्रकृति और दायरा - अभिनिर्धारित: अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत

क्षेत्राधिकार बहुत व्यापक और पूर्ण है - हालांकि, विवेक और स्व-नियंत्रित अनुशासन के नियम के रूप में, सर्वोच्च न्यायालय पहली बार में अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इनकार कर देता है यदि उठाई गई शिकायत ऐसा करने के लिए सक्षम किसी भी अधीनस्थ मंच द्वारा ध्यान रखे जाने में सक्षम है - यह संविधान द्वारा निहित विश्वास और भरोसे के साथ सर्वोच्च न्यायालय में निहित एक असाधारण क्षेत्राधिकार है - यह एक विवेकाधीन क्षेत्राधिकार है और इसे अत्यंत सावधानी और सतर्कता के साथ प्रयोग किया जाना चाहिए।

अनुच्छेद 136 - प्रतिकूल टिप्पणियां - उच्च न्यायालय द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के विरुद्ध - निरसन - अभिनिर्धारित : सर्वोच्च न्यायालय के रूप में अपनी गरिमा को बनाए रखने के लिए, ऐसी प्रतिकूल टिप्पणियों को उच्च न्यायालय के अभिलेख से हटा दिया गया।

अनुच्छेद 144 - प्रकृति और दायरा - सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश पर, सर्वोच्च न्यायालय के महानिबंधक ने कुछ जानकारी मांगते हुए उच्च न्यायालय के महानिबंधक को एक संचार संबोधित किया - उच्च न्यायालय ने ऐसे संचार को न्यायिक पक्ष पर निस्तारित किया - शुद्धता - अभिनिर्धारित: ऐसे संचार को प्रशासनिक पक्ष पर निस्तारित किया जाना चाहिए था - उच्च न्यायालय को सही तथ्यात्मक स्थिति के बारे में सर्वोच्च न्यायालय को सूचित करना चाहिए था - ऐसा संचार उच्च न्यायालय के लिए अपमानजनक नहीं था - ऐसे संचार के कारण उच्च न्यायालय को वादी के दर्जे तक कम नहीं किया गया और न ही उच्च न्यायालय को पक्षकार के रूप में शामिल किया गया और न ही उच्च न्यायालय को एक संस्था के रूप में और एक अभिलेख न्यायालय के रूप में एक स्पष्टीकरण देने या जवाब देने के लिए बुलाया गया था।

अनुच्छेद 50 - कार्यपालिका से न्यायपालिका का पृथक्करण - न्यायपालिका की स्वतंत्रता - अभिनिर्धारित: सही परिप्रेक्ष्य में जाँच किए गए अपीलीय पदानुक्रम, प्रणाली के भीतर न्यायनिर्णयन में अंतिमता को सुरक्षित करके और किसी भी बाहरी हस्तक्षेप या सुधार से इसके अलगाव द्वारा न्यायपालिका की स्वतंत्रता में मजबूती से योगदान देने वाला एक

कारक है।

संविधान की व्याख्या - मार्गदर्शक कारक -अभिनिर्धारित: संविधान की व्याख्या उन विभिन्न मूल्यों के साथ उतार-चढ़ाव नहीं कर सकती है जिनमें विभिन्न न्यायाधीश विश्वास करते हैं - इसलिए, सामान्य हित की अवधारणा को मार्गदर्शक होना चाहिए।

दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908

धारा 96 और 100 - अपील - प्रकृति और दायरा - अभिनिर्धारित: अपील तथ्यों के साथ-साथ कानून को समीक्षा और पुनःपरीक्षण के लिए पूरी तरह से अधीन करते हुए किसी भी अधीनस्थ न्यायालय या न्यायाधिकरण से एक श्रेष्ठ न्यायालय में एक कारण को हटाना निहित करती है - अपीलीय क्षेत्राधिकार के सिद्धांत हैं (i) श्रेष्ठ और अधीनस्थ न्यायालयों के संबंध का अस्तित्व - (ii) बाद वाले के निर्णयों की समीक्षा करने की पूर्व वाले में शक्ति - एक प्रमुख मौलिक क्षेत्राधिकार का प्रदान किया जाना, उस शक्ति के आवश्यक सहगामी के रूप में, ऐसी अन्य आनुषंगिक और सहायक शक्तियों का प्रयोग करने की शक्ति भी साथ लाता है, जिनके बिना प्रमुख शक्ति का प्रदान किया जाना निरर्थक हो जाएगा - साथ ही, अपील अनियमित या अक्षम होने पर भी अपील रहना बंद नहीं होती है - अपीलीय क्षेत्राधिकार का अस्तित्व अधीनस्थ क्षेत्राधिकार को अपीलीय क्षेत्राधिकार का पूर्ण और प्रभावी ढंग से प्रयोग करने में सक्षम बनाने के लिए अपनी पूरी सहायता प्रदान किया जाना करने के लिए बाध्य करता है।

शब्द और वाक्यांश

"अपील" - अर्थ

उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए जनहित में एक सुनवाई पर संलग्न थी। उच्च न्यायालय सतत परमादेश की प्रकृति के आदेश जारी कर रहा था और अनुपालन की निगरानी भी कर रहा था।

उच्च न्यायालय ने 1-10-2001 को एक अंतरिम आदेश पारित किया। कुछ निर्माता/डेवलपर निर्माण गतिविधि में संलग्न थे और 1-10-2001 के अंतरिम आदेश का प्रभाव उनकी निर्माण गतिविधि को पर्याप्त रूप से स्थगित करना था। उनमें से सात ने 17-9-2002 को उच्च न्यायालय के 1-10-2001 के आदेश के विरुद्ध विशेष अनुमति अपील (एसएलपी) के लिए याचिका दायर की। कारण शीर्षक में उन्होंने खुद को हस्तक्षेपकर्ता/याचिकाकर्ता के रूप में वर्णित किया था। वे उन कार्यवाहियों के पक्षकार नहीं थे और न ही उन्हें सूचना दी गई थी, जिनमें 1-10-2001 का आदेश पारित किया गया था, कम से कम उन्होंने एसएलपी दायर करने की अनुमति मांगते हुए अपने आवेदन में ऐसा कहा।

इस न्यायालय ने 28-10-2002 को एसएलपी को खारिज कर दिया और उन्हें अपने मामले और शिकायत, यदि कोई हो, तो उच्च न्यायालय के समक्ष रखने और उच्च न्यायालय द्वारा पारित 1-10-2001 के अंतरिम आदेश को निरस्त या संशोधित करने के लिए प्रार्थना करने का निर्देश दिया। इस न्यायालय ने आगे फैसला सुनाया कि याचिकाकर्ता मामले की त्वरित सुनवाई के लिए उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के समक्ष आवेदन कर सकते हैं।

5-4-2003 को याचिकाकर्ताओं द्वारा इस न्यायालय में अंतरिम आवेदन दायर किए गए जिसमें प्रस्तुत किया गया कि 1-10-2001 के अंतरिम आदेश को निरस्त करने के लिए उनकी प्रार्थना करने वाले आवेदन पहले ही 16/17-7-2002 को दायर किए जा चुके थे, लेकिन स्थगन-निरस्तीकरण आवेदन की सुनवाई के लिए कोई तारीख तय नहीं की गई थी। आवेदन में यह भी उल्लेख किया गया था कि उल्लेख पत्रियां प्रस्तुत की गई थीं जिन्हें पीठ के उपलब्ध होने पर रखा जाने के लिए अभिलेख पर लिया गया था। यह भी कहा गया कि इस न्यायालय के 28-10-2002 के आदेश के बाद मामले की शीघ्र सूची के लिए प्रार्थना करते हुए उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के समक्ष तीन अलग-अलग दिनों में ऐसी उल्लेख पत्रियां दायर की गई थीं लेकिन कोई आदेश पारित नहीं किया गया था। आवेदन में

किए गए अभिकथनों को शपथ पत्र और दस्तावेजों द्वारा भी समर्थित किया गया था जिसमें ज्यादातर उच्च न्यायालय में कार्यवाहियों के अभिलेखों की प्रतियां शामिल थीं।

इस न्यायालय ने आवेदनों पर सूचना-पत्र जारी करने का निर्देश दिया। 3-11-2003 को, भारत के मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता वाली एक तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने, उपस्थित पक्षकारों के अधिवक्ता को सुनने के बाद, और याचिकाकर्ताओं द्वारा किए गए अभिकथनों के सही होने का पता लगाने के लिए, उच्च न्यायालय से एक जवाब मांगा। इस न्यायालय के आदेश को इस न्यायालय के निबंधन द्वारा उच्च न्यायालय के महानिबंधक को सूचित किया गया था।

उच्च न्यायालय के महानिबंधक ने एक नोट तैयार किया और विचार के लिए उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के समक्ष रखा। नोट को प्रशासनिक पक्ष पर नहीं बल्कि न्यायिक पक्ष पर विचार के लिए लिया गया प्रतीत होता है। उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय के 3-11-2003 के आदेश पर कड़ा विरोध जताया, यह धारणा बनाई कि जैसे इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय को - एक संस्था के रूप में - "एक स्पष्टीकरण देने के लिए 'निर्देशित' किया था।"

उच्च न्यायालय द्वारा 3-12-2003 के आदेश में की गई टिप्पणियों से निम्नलिखित प्रश्न उत्पन्न हुए:

(क) क्या यह न्यायालय, संविधान के अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत अपीलिय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, जानकारी मांगने के लिए उच्च न्यायालय को संचार भेजने का निर्देश नहीं दे सकता था, जिसका उद्देश्य (i) तथ्यों का पता लगाना, (ii) 28-10-2002 के आदेश में निहित निर्देश का अनुपालन सुरक्षित करना था?

(ख) क्या उच्च न्यायालय की खंडपीठ उन सभी टिप्पणियों को करने में - कानून में और औचित्य के विचारों पर - उचित थी?

(ग) क्या उच्च न्यायालय के लिए इस न्यायालय के महानिबंधक को एक विशेष पीठ

के समक्ष विचार के लिए अपना संचार रखने का निर्देश जारी करना उचित है याचिकाओं को निस्तारित करते हुए, न्यायालय ने फैसला सुनाया:

अभिनिर्धारित: 1. न्यायपालिका के लिए तैयार की गई संवैधानिक योजना के अन्तर्गत, सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों अभिलेख न्यायालय हैं। उच्च न्यायालय, सर्वोच्च न्यायालय के 'अधीनस्थ' न्यायालय नहीं है। एक तरह से, उच्च न्यायालय में निहित न्यायिक शक्तियों का दायरा अधिक व्यापक है क्योंकि उसके पास संविधान के अनुच्छेद 226 द्वारा प्रदत्त सभी विशेषाधिकार विनिर्दिष्ट आदेश जारी करने का क्षेत्राधिकार है जो संविधान के भाग III द्वारा प्रदत्त किसी भी अधिकार के प्रवर्तन के लिए और *किसी अन्य उद्देश्य* के लिए है, जबकि सर्वोच्च न्यायालय का विशेषाधिकार विनिर्दिष्ट आदेश जारी करने का मूल क्षेत्राधिकार मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन तक ही सीमित रहता है और राष्ट्रपति चुनाव या अंतर-राज्य विवादों जैसे मामलों से निस्तारण तक सीमित रहता है जिनकी संविधान में उच्च न्यायालयों द्वारा सुनवाई और निर्धारण किए जाने की परिकल्पना नहीं की गई है। उच्च न्यायालय, संविधान के अनुच्छेद 227 के अन्तर्गत सभी अधीनस्थ न्यायालयों और न्यायाधिकरणों पर अधीक्षण की शक्ति का प्रयोग करता है; सर्वोच्च न्यायालय को अधीक्षण की कोई शक्ति प्रदान किया जाना नहीं की गई है। यदि सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों को न्याय प्रशासन में भाई माना जाए, तो उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार बड़ा है लेकिन सर्वोच्च न्यायालय फिर भी बड़ा भाई बना रहता है। कुछ प्रावधान हैं जो उच्च न्यायालयों पर सर्वोच्च न्यायालय को एक बढ़त देते हैं, और पदानुक्रम में एक श्रेष्ठ स्थान प्रदान किया जाना करते हैं। जहां तक अपीलीय क्षेत्राधिकार का संबंध है, सभी दीवानी और दांडिक मामलों में, सर्वोच्च न्यायालय अपील का उच्चतम और अंतिम न्यायालय है। यह कानून का अंतिम दुभाषिया है। अनुच्छेद 139-ए के अन्तर्गत, सर्वोच्च न्यायालय एक उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित किसी भी मामले को दूसरे उच्च न्यायालय में स्थानांतरित कर सकता है या मामले को स्वयं वापस ले सकता है। अनुच्छेद 141 के अन्तर्गत, सर्वोच्च

न्यायालय द्वारा निर्णय किया गया कानून भारत के क्षेत्र के भीतर उच्च न्यायालय सहित सभी न्यायालयों पर बाध्यकारी होगा। अनुच्छेद 144 के अन्तर्गत भारत के क्षेत्र में सभी प्राधिकारी, दीवानी और न्यायिक - और इसमें उच्च न्यायालय भी शामिल होगा - सर्वोच्च न्यायालय की सहायता में कार्य करेंगे। (510-ए-ई)

भारत निर्माता प्राइवेट लिमिटेड बनाम परिजात फ्लैट ओनर्स को-ऑपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी लिमिटेड, (1999) 5 एस.सी.सी. 622; भारत अर्थ मूवर्स बनाम सी.आई.टी., (2000) 6 एस.सी.सी. 645; असिस्टेंट कलेक्टर ऑफ सेंट्रल एक्साइज बनाम इनलप इंडिया लिमिटेड, (1985) 1 एस.सी.सी. 260; सिलीगुडी म्यूनिसिपैलिटी बनाम अमलेन्दु दास, (1984) 2 एस.सी.सी. 436; तथा पंजाब राज्य बनाम जगदेव सिंह तलवंडी, (1984) 1 एस.सी.सी. 596 — अवलंबन किया गया।

कैसेल एंड कंपनी लिमिटेड बनाम ब्रूम, (1972) 1 ऑल ई.आर. 801, संदर्भित।

2.1. एक एकीकृत पदानुक्रमित न्यायिक प्रणाली में जिसे भारत ने अपने संविधान के अन्तर्गत स्वीकार किया है, ऊर्ध्वाधर रूप से सर्वोच्च न्यायालय को उच्च न्यायालयों के ऊपर रखा गया है। यही तथ्य कि संविधान उच्च न्यायालयों पर सर्वोच्च न्यायालय को एक अपीलीय शक्ति प्रदान किया जाना करता है, कुछ परिणाम स्वाभाविक रूप से उत्पन्न और अनुसरण करते हैं। अपील का अर्थ अपने स्वाभाविक और साधारण अर्थ में किसी भी अधीनस्थ न्यायालय या न्यायाधिकरण से एक श्रेष्ठ न्यायालय में निर्णय की दृढ़ता और अधीनस्थ न्यायालय या न्यायाधिकरण की कार्यवाहियों का परीक्षण करने के उद्देश्य से एक कारण को हटाना है। श्रेष्ठ मंच के पास अपील किए गए मंच के डिक्री या आदेश को उलटने, पुष्टि करने, रद्द करने या संशोधित करने का क्षेत्राधिकार होगा और पुनर्विचारण की स्थिति में, अधीनस्थ मंच को मामले की पुनःसुनवाई करनी होगी और ऐसे निर्देशों का अनुपालन करना होगा जो पुनर्विचारण के आदेश के साथ आ सकते हैं। अपीलीय क्षेत्राधिकार स्वाभाविक रूप से अपने साथ सुधारात्मक निर्देश जारी करने की एक शक्ति रखता है जो अधीनस्थ मंच पर

बाध्यकारी होती है और बाद वाले की ओर से ऐसे निर्देशों का पालन करने में विफलता या ऐसे निर्देशों के औचित्य पर अनादर दिखाना या प्रश्न उठाना - यह स्पष्ट है - न्याय प्रशासन में पदानुक्रमित प्रणाली के लिए विनाशकारी होगा। न्याय के चाहने वाले और समाज दोनों में विश्वास खो देंगे। (510-ई-एच; 511-ए)

शंकर रामचंद्र अभ्यंकर बनाम कृष्णाजी दत्तात्रेय बापट, ए.आई.आर. 1970 एस.सी. 1

— अवलंबन।

2.2. एक प्रमुख मौलिक क्षेत्राधिकार का प्रदान किया जाना, उस शक्ति के आवश्यक सहगामी के रूप में, ऐसी अन्य आनुषंगिक और सहायक शक्तियों का प्रयोग करने की शक्ति भी साथ लाता है, जिनके बिना प्रमुख शक्ति का प्रदान किया जाना किया जाना निरर्थक हो जाएगा। अपील अनियमित या अक्षम होने पर भी अपील रहना बंद नहीं होती है। (511-सी-ई)

नागेंद्र नाथ डे बनाम सुरेश चंद्र डे, ए.आई.आर. 1932 पी.सी. 165 — उल्लिखित।

2.3. सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के दोनों संवैधानिक रूप से एक दूसरे से स्वतंत्र होने और दोनों के अभिलेख न्यायालय होने के बावजूद, अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग की सीमा तक, निश्चित रूप से सर्वोच्च न्यायालय एक श्रेष्ठ क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है और इसलिए उच्च न्यायालयों से एक श्रेष्ठ न्यायालय है, जो उस संदर्भ में एक अधीनस्थ क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हैं।

(512-ए-बी)

शंकर रामचंद्र अभ्यंकर बनाम कृष्णाजी दत्तात्रेय बापट, ए.आई.आर. 1970 एस.सी. 1

तथा *नागेंद्र नाथ डे बनाम सुरेश चंद्र डे*, ए.आई.आर. 1932 पी.सी. 165 — अवलंबन।

चप्पन बनाम मोइदिन कुट्टी, (1899) 22 आई.एल.आर. 22 मद्रास 66 —

अनुमोदित।

व्हार्टन्स लॉ लेक्सिकन, स्टोरी : कमेंट्रीज ऑन द कांस्टीट्यूशन ऑफ द यूनाइटेड

स्टेट्स, धारा 1761 तथा शिमोन शेट्रीट : जजेस ऑन ट्रायल, पृष्ठ 201-202 — उल्लिखित।

3. अपीलीय न्यायालय की भूमिका न्यायिक आचरण की जाँच करने और न्यायालयों में न्यायिक व्यवहार के उच्च मानकों को सुरक्षित करने में बहुआयामी है। अपीलीय न्यायालय विशिष्ट मामलों में न्यायिक कदाचार की निंदा और आलोचना करता है और ऐसे कदाचार के परिणामस्वरूप होने वाले अन्याय को सही करता है। चाहे वह निर्णय को उलटता है, दोषसिद्धि को अभिखंडित करता है, सजा को कम करता है, या किसी भी तरीके से निर्णय को बदलता है, कदाचार की अस्वीकृति और निंदा न्यायालयों में सार्वजनिक विश्वास को बहाल करती है, जो अन्यथा क्षीण हो सकता था। पीड़ित या पूर्वाग्रहित पक्षकार, और आम जनता, एक विशेष न्यायाधीश के कदाचार को संपूर्ण न्यायपालिका पर आरोपित करने के लिए लुभा सकती है। अपीलीय न्यायालय की अस्वीकृति और आलोचना, भले ही निर्णय में संशोधन न किया गया हो, ऐसे खतरे को खत्म कर देती है और न्याय के तराजू को उनके उचित संतुलन में बहाल कर देती है। (512-ई-जी)

4. भारत के संविधान के अध्याय IV, जिसका शीर्षक — संघ न्यायपालिका है — अनुच्छेद 132 से 136 तक सर्वोच्च न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार से संबंधित हैं। इन सभी अनुच्छेदों में से, यह अनुच्छेद 136 है, जिसे व्यापकतम संभव शब्दों में वाक्यांशबद्ध किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय में किसी भी न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए किसी भी प्रकार के निर्णय या आदेश के विरुद्ध और एक कारण या मामले में विशेष अनुमति दिए जाने के अधीन अपीलीय क्षेत्राधिकार ग्रहण करने पर प्रयोग किए जाने वाले एक पूर्ण क्षेत्राधिकार को समाहित और निहित किया गया है। यह एक असाधारण क्षेत्राधिकार है जो संविधान द्वारा निहित विश्वास और भरोसे के साथ न्यायालय में निहित है और इस क्षेत्राधिकार के प्रयोग में अत्यंत सावधानी और सतर्कता बरती जानी है। अनुच्छेद 136 किसी पक्षकार को अपील का अधिकार प्रदान किया जाना नहीं करता है बल्कि सर्वोच्च न्यायालय में एक विशाल विवेक निहित करता है जिसका उद्देश्य न्याय, कर्तव्य की पुकार और अन्याय

को मिटाने के विचारों द्वारा प्रयोग किया जाना है।

(512-जी-एच; 513-ए-बी)

धाकेश्वरी कॉटन मिल्स बनाम सी.आई.टी., ए.आई.आर. 1955 एस.सी. 65 —
अवलंबन।

मोतीलाल सी. सेतलवाड : सेंटनरी लेक्चर सीरीज ऑन सेंटनरी सेलिब्रेशन ऑफ द
एडवोकेट्स एसोसिएशन ऑफ वेस्टर्न इंडिया, सेंटनरी स्मारिका, पृष्ठ 134 — उल्लिखित।

5. संविधान के संस्थापकों ने देश में न्याय वितरण प्रणाली को सामग्री में एक सजातीय के रूप में तैयार किया, स्वतंत्रता और पदानुक्रम दोनों का ध्यान रखा, और ऐसा करते समय संतुलन के तराजू को सम रखा। संघ न्यायपालिका और राज्य न्यायपालिका निस्संदेह एक दूसरे से स्वतंत्र हैं, सिवाय क्षेत्राधिकार से संबंधित कुछ क्षेत्रों के जैसा कि ऊपर इंगित किया गया है। हालांकि, साथ ही, अपीलीय पदानुक्रम पर जोर दिया जाना चाहिए, जो सही परिप्रेक्ष्य में जाँच करने पर, न्यायपालिका की स्वतंत्रता में मजबूती से योगदान देने वाला एक कारक है और प्रणाली के भीतर न्यायनिर्णयन में अंतिमता और किसी भी बाहरी हस्तक्षेप या सुधार से इसकी अलगाव को सुरक्षित करता है। नाजुक संतुलन को सावधानीपूर्वक तैयार किया गया है और स्वतंत्रता और परस्पर संबंध द्वारा प्राप्त करने की मांग की गई है - दोनों सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के साथ-साथ मौजूद हैं। ये 'तनाव के संबंध के साथ-साथ सहयोग के संबंध' भी हैं। (पृष्ठ 513-एफ-एच; 514-ए)।

फ्रैंक एम. कॉफिन : ऑन अपील : कोर्ट्स, लॉयरिंग, एंड जजिंग, पृष्ठ 52-53 —
उल्लिखित।

6.1. संविधान के निर्माताओं ने सर्वोच्च न्यायालय को उच्च न्यायालय को आदेश देने की शक्ति विशेष रूप से प्रदान किया जाना करना आवश्यक नहीं समझा, क्योंकि वे दूरदर्शिता और दूरदर्शी के व्यक्ति थे। वे जानते थे कि सभी संवैधानिक पदाधिकारी और संस्थाएँ लोकतंत्र और संविधानवाद के अनुरूप मानदंडों और परंपराओं के सर्वोत्तम हित में कार्य करेंगी, जो

संविधान में निर्धारित और उससे पहचाने जा सकते हैं और जैसा कि इतिहास और पीढ़ी दर पीढ़ी के न्यायाधीशों द्वारा हस्तांतरित किए गए हैं। यह अपेक्षित था कि हर कोई अपनी सीमाओं के भीतर रहेगा और अपनी सीमाओं का उल्लंघन नहीं करेगा ताकि आदर्श और मूल्य एक जीवित वास्तविकता बने रहें और या तो एक अतिक्रमण या एक भ्रम न बनें। एक-दूसरे के पूरक और सहायक संवैधानिक और लोकतांत्रिक संस्थाएं इन हस्तांतरित परंपराओं को मजबूती प्रदान किया जाना करेंगी और ऐसी समृद्ध परंपराओं को विकसित करने में भी योगदान करेंगी जिनका सम्मान किया जाएगा और भविष्य द्वारा जयकार की जाएगी। इसका परिणाम संविधान के कार्य को मजबूत करने में होगा। (पृष्ठ 514-ई-जी)

6.2. संविधानवाद के क्षेत्रों में, पदाधिकारियों के बीच आपसी विश्वास और सम्मान के मूल्य, परंपरा द्वारा पोषित, संबंध के नियमों को संहिताबद्ध करने की आवश्यकता को कम करते हैं। अनुभव से पता चलता है कि ऐसे नाजुक संबंध का कोई भी कठोर संहिताकरण अपमान पर तुले लोगों के लिए लाभदायक होता है। एक कठोर लिखित कानून उस गरिमा को बनाए रखना कठिन बना देता है जिसे सही सोच वाले लोगों द्वारा समझना बेहतर और सही ढंग से छोड़ दिया जाता है जो उत्सुकता से दूसरों की गरिमा को बनाए रखते हैं जैसा कि वे अपनी करते हैं। (पृष्ठ 514-जी-एच; 515-ए)

7. संविधान के अन्तर्गत एक संस्था का दूसरी संस्था के साथ व्यवहार करते समय गरिमा और शिष्टाचार का पालन करना होगा। कोई भी न्यायाधीश दूसरे न्यायाधीश की आलोचना नहीं करेगा और निश्चित रूप से कठोरता से नहीं करेगा। इससे किसी भी विचलन को शीघ्रतम और व्यापक हित में ठीक करने की आवश्यकता है। एक अपील मंच का यह दायित्व है कि वह अपील के अधीन क्षेत्राधिकार द्वारा की गई नियम से ऐसी विपथन को ठीक करे जिसे उसके ध्यान में लाया गया हो और यदि वह ऐसा नहीं करता है तो वह अपने कर्तव्य में विफल होता है। निस्संदेह, सुधारात्मक कदम भी सावधानीपूर्वक गरिमा और सम्मान के साथ लिया जाता है, न कि कठोर आलोचना के माध्यम से। (पृष्ठ 513-बी-सी)

डेविड पैनिक: न्यायाधीश, पृष्ठ 127-128, संदर्भित।

8. सर्वोच्च न्यायालय, अपने अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, निर्देश जारी करने के लिए बुलाया जाता है, जो न केवल अपीलीय मंच के रूप में उसका विशेषाधिकार है बल्कि अक्सर न्याय की मांगों को पूरा करने और अपीलीय शक्ति के प्रभावी प्रयोग के लिए एक आवश्यकता भी है। फिर भी, यह सावधानीपूर्वक ऐसे 'निर्देशों' को जारी करने से परहेज करता है और इसके बजाय वैकल्पिक और विनम्र अभिव्यक्तियों का उपयोग करता है जैसे - "हम उच्च न्यायालय से अनुरोध करते हैं", "उच्च न्यायालय से अपेक्षित है कि वह", "हम भरोसा करते हैं और आशा करते हैं कि उच्च न्यायालय ऐसा करेगा/करेगी", जो शिष्टाचार और सम्मान तथा आदर द्वारा व्यक्त होते हैं जो सर्वोच्च न्यायालय का उच्च न्यायालयों के लिए है - और होना भी चाहिए। यह प्रथा एक परंपरा के रूप में विकसित और जमीनी स्तर पर हासिल हुई है। संभवतः एक या दो उदाहरणों को छोड़कर, जो भी परिहार्य रहे होंगे, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उच्च न्यायालय को किसी भी अनादर दिखाए जाने या इसके विपरीत या इस न्यायालय द्वारा किसी भी उच्च न्यायालय द्वारा इसे दिखाए गए अनादर के किसी भी उदाहरण का संज्ञान लेने के लिए बुलाए जाने का कोई कारण नहीं आया है। (518-एफ-एच; 519-ए)

9.1. दो न्यायिक संस्थाओं के बीच सहयोग प्राप्त किया जा सकता है और तनाव से बचा जा सकता है यदि केवल न्यायिक सहकर्मी भावना सीखी जाती है, उत्कृष्टता प्रबल होती है और होम्स की विनम्रता शासन करती है। (पृष्ठ 520-बी-सी)

बेंजामिन एन. कार्डोजो: "बेंजामिन नाथन कार्डोजो के चयनित लेखन पृष्ठ 427-428, हैरी टी. एडवर्ड्स: "न्यायिक मानदंड: एक न्यायाधीश का दृष्टिकोण", वाशिंगटन विश्वविद्यालय स्कूल ऑफ लॉ, ओलिवर वेंडेल होम्स जूनियर जे.एच. वूटन द्वारा उद्धृत और उद्धरण, "क्रिएटिविटी इन द लॉ" (1972) 4 ऑस्ट्रेलियाई जे फॉरेंसिक साइंसेज पृष्ठ 107, संदर्भित।

9.2. संविधान की व्याख्या उन विभिन्न मूल्यों के साथ उतार-चढ़ाव नहीं कर सकती है जिनमें विभिन्न न्यायाधीश विश्वास करते हैं। यह सामान्य हित की अवधारणा है, जिसे परीक्षण समय में - संस्थानों के रूप में और व्यक्तियों के रूप में - हमें मार्गदर्शन करना चाहिए। (पृष्ठ 520-डी-ई)

एच.एम सीरवाई: "भारत का संवैधानिक कानून" चौथा संस्करण, रजत जयंती संस्करण, खंड 3 कंडिका 25. 481, संदर्भित।

10. क्षेत्राधिकार के रूप में, और पदानुक्रमित प्रणाली में, जहां तक अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग का संबंध है, निस्संदेह सर्वोच्च न्यायालय एक श्रेष्ठ मंच है और उच्च न्यायालय एक अधीनस्थ मंच है, इस अर्थ में कि बाद वाला पूर्व वाले के 'अपीलीय क्षेत्राधिकार' नामक क्षेत्राधिकार के अधीन है। (520-एफ-जी)

11. अपीलीय क्षेत्राधिकार का अस्तित्व ही अधीनस्थ क्षेत्राधिकार को उच्च क्षेत्राधिकार को अपीलीय क्षेत्राधिकार का पूर्ण और प्रभावी ढंग से प्रयोग करने में सक्षम बनाने के लिए अपनी पूरी सहायता प्रदान किया जाना करने के लिए बाध्य करता है। अधीनस्थ मंच को श्रेष्ठ मंच को अपने मामले और कार्यवाहियों के अभिलेख को प्रमाणित करने के लिए बुलाया जा सकता है। श्रेष्ठ मंच को कुछ जानकारी की आवश्यकता हो सकती है जो अधीनस्थ मंच के कब्जे या ज्ञान में होने के कारण, केवल उसी के द्वारा उपलब्ध कराई जानी चाहिए। श्रेष्ठ मंच स्थगन आदेश या रोक आदेश जारी कर सकता है या अधीनस्थ मंच में कार्यवाहियों को निलंबित, तेज या विनियमित कर सकता है। अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग के दौरान या अंत में उच्च मंच द्वारा दिया गया कोई भी निर्देश अधीनस्थ मंच द्वारा अनुपालन किया जाना चाहिए, अन्यथा पदानुक्रम अर्थहीन हो जाता है।

(520-जी-एच; 521-बी-सी)

12. हालांकि, सर्वोच्च न्यायालय पर अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत प्रदत्त क्षेत्राधिकार बहुत व्यापक है और कोई भी तकनीकीता ऐसे क्षेत्राधिकार के प्रभावी प्रयोग को रोक या बाधित

नहीं कर सकती है, फिर भी विवेक और स्व-नियंत्रित अनुशासन के नियम के रूप में श्रेष्ठ मंच पहली बार में अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इनकार कर देता है यदि उठाई गई शिकायत ऐसा करने के लिए सक्षम किसी भी अधीनस्थ मंच द्वारा ध्यान रखे जाने में सक्षम है। (पृष्ठ 521-बी-सी)

13. 28-10-2002 को, इस न्यायालय ने आत्म-नियंत्रण का प्रयोग किया और एसएलपी पर विचार करने से इनकार कर दिया, यह राय बनाई कि उसे क्यों हस्तक्षेप करना चाहिए और उच्च न्यायालय को अपनी संवैधानिक क्षेत्राधिकार का स्वतंत्र रूप से प्रयोग करने के लिए खुला क्यों नहीं छोड़ना चाहिए और वह भी वर्तमान मामले में जनहित में। हालांकि, उठाई गई शिकायत को जल्दी सुना जाना आवश्यक था; ऐसी राय बनाना और परिणामी निर्देश जारी करना संविधान के अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत निस्संदेह इस न्यायालय की क्षमता के भीतर था। बाद में, 3-11-2003 का आदेश एक शपथ पत्र द्वारा समर्थित याचिका पर पारित किया गया, जिसमें तथ्यों और तारीखों का उल्लेख किया गया था, जिसके कारण इसे दायर करने का अवसर उत्पन्न हुआ, जो कि यदि शिकायत नहीं थी, तो कम से कम एक शिकायत थी कि उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 136 द्वारा प्रदत्त अपने क्षेत्राधिकार के प्रयोग में इस न्यायालय द्वारा पारित 28-10-2002 के आदेश का अनुपालन करने में विफल रहा था। न्यायालय ने महसूस किया कि आदेश का अनुपालन किया जाना चाहिए था। न्यायालय इस धारणा के साथ आगे बढ़ा कि साधारण क्रम में वह यह सोचने के लिए राजी नहीं होगा, विश्वास करना तो दूर की बात है, कि उच्च न्यायालय इस न्यायालय के आदेश का अनुपालन नहीं कर रहा था, यदि आदेश को उसके ध्यान में लाया गया था। इसलिए, तथ्यों का पता लगाने के लिए इस न्यायालय ने एक जवाब मांगा। इस न्यायालय के महानिबंधक ने जानकारी मांगते हुए उच्च न्यायालय के महानिबंधक को एक संचार संबोधित किया। संचार को प्रशासनिक पक्ष पर निस्तारित किया जाना चाहिए था और उच्च न्यायालय के महानिबंधक द्वारा जवाब दिया जाना चाहिए था, बस सही तथ्यात्मक स्थिति के

बारे में इस न्यायालय को सूचित करना था। यदि उच्च न्यायालय के अंत में कोई त्रुटि, कोई चूक और गैर-अनुपालन जैसा कुछ नहीं था, तो उस संबंध में एक संचार में संक्षिप्त आवश्यक तथ्यों के साथ उच्च न्यायालय के महानिबंधक द्वारा इस न्यायालय के महानिबंधक को एक मूल्यांकन, जिसे बाद वाला न्यायिक पक्ष पर इस न्यायालय के विचार के लिए रखता, पर्याप्त था। ऐसी प्रक्रिया का पालन अक्सर किया जाता है और किसी ने भी इस प्रथा पर अपवाद नहीं लिया है सिवाय उस एकल उदाहरण के जिससे अनिच्छा से निपटा जा रहा है। (521-डी-एच; 522-ए-बी)

15.1. इस मामले में उच्च न्यायालय की खंडपीठ के मन में उत्पन्न गलत धारणा पर केवल खेद व्यक्त किया जा सकता है। इस न्यायालय द्वारा उच्च न्यायालय के महानिबंधक को संबोधित एक अहानिकारक संचार के कारण उच्च न्यायालय को वादी के दर्जे तक कम नहीं किया गया था और न ही उच्च न्यायालय को पक्षकार के रूप में शामिल किया गया था और न ही उच्च न्यायालय को एक संस्था के रूप में और एक अभिलेख न्यायालय के रूप में एक स्पष्टीकरण देने या जवाब देने के लिए बुलाया गया था। (522-बी-सी)

15.2. यह स्पष्ट है कि जो कोई व्यक्ति *असत्य प्रस्तुतीकरण या सत्य के दमन* में लिप्त होकर इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाता है, उसे परिणाम भुगतने होंगे, किंतु ऐसा केवल तथ्यों के सुनिश्चित होने के पश्चात् ही होगा। साधारणतया, शपथ पत्र द्वारा समर्थित और तथ्यों का विवरण देने वाली इस न्यायालय के समक्ष दायर याचिका में किए गए अभिकथनों पर अविश्वास करने के लिए क्या था? फिर भी, न्यायालय ने याचिका पर जल्दबाजी में कार्य नहीं किया और कोई एकतरफा आदेश पारित नहीं किया। देखभाल, सावधानी और विवेक के साथ कार्य करते हुए - और स्पष्ट रूप से उच्च न्यायालय के प्रति सम्मान के साथ - उसने अपने हाथ पीछे रखे और तथ्यों का पता लगाने की कोशिश की। उच्च न्यायालय के लिए नाराज और परेशान महसूस करने का कोई कारण नहीं था, घबराए महसूस करने और जिस तरह से उसने दुर्भाग्य से किया है, उस तरह से प्रतिक्रिया करने का

तो सवाल ही नहीं उठता। उच्च न्यायालय को यह ज्ञात होना चाहिए था कि दोनों आदेश, अर्थात् दिनांक 28-10-2002 का आदेश तथा दिनांक 3-11-2003 का आदेश, भारत के मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता वाली पीठों द्वारा पारित किए गए थे, जो भारतीय न्यायपालिका के *पेट्रफैमिलियस (कुलपिता)* हैं। {522-डी-एफ}

15.3. उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित 3-12-2003 का आदेश दुर्भाग्यपूर्ण है। यह न्यायालय वर्तमान आदेश को पारित करने में बहुत खुश महसूस नहीं कर रहा है। इस न्यायालय की असहजता और बढ़ जाती है जब यह ध्यान दिया जाता है कि 3-12-2003 का आदेश पारित करने वाली उच्च न्यायालय की खंडपीठ की अध्यक्षता भी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा की गई थी। यह सब परिहार्य था और एक तिल का ताड़ बनाने से दूर इसे टाला जाना चाहिए था। (520-एफ-जी)।

16. हालांकि, इस न्यायालय को देश के सर्वोच्च न्यायालय के रूप में इस महान संस्था की गरिमा को बनाए रखना होगा और उच्च न्यायालय की एक भ्रामक धारणा को ठीक करना होगा, कि इस न्यायालय के किसी भी आदेश का इरादा उच्च न्यायालय के एक संवैधानिक न्यायालय या अभिलेख न्यायालय के दर्जे को कमजोर करना था। उच्च न्यायालय का ऐसा आदेश, जिसने न तो इस न्यायालय और न ही उच्च न्यायालय को कोई भला किया है, इस न्यायालय के ध्यान में लाए जाने के बाद, यह न्यायालय संवैधानिक रूप से बाध्य है कि वह अपनी आँखें न झपकाए बल्कि कार्य करे। इसलिए, यह निर्देश दिया जाता है कि उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित 3-12-2003 के आदेश से न्यायालय के पहले भाग में उद्धृत और पुनः प्रस्तुत किए गए सभी अंशों को इस न्यायालय के अपमानजनक, निंदात्मक, पूरी तरह से अवांछित और इस न्यायालय की कार्यवाहियों पर टिप्पणी करने वाला होने के कारण अभिलेखागार से हटा दिया जाए और काट दिया जाए, जिसे उच्च न्यायालय को नहीं करना चाहिए था। ऐसी टिप्पणियों को एक अभिलेख न्यायालय के रूप में उच्च न्यायालय के अभिलेख पर बनाए नहीं रखा जाना चाहिए। आदेश का अक्षरशः और

भाव से पालन किया जाएगा और अनुपालन की सूचना-पत्र उच्च न्यायालय के महानिबंधक द्वारा इस न्यायालय के महानिबंधक को दी जाएगी। यह न्यायालय इस अच्छी आशा के साथ विदाई लेता है कि उसके लिए ऐसा आदेश देने का कोई अन्य अवसर नहीं मिलेगा। (522-जी-एच; 523-ए-बी-सी)।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: एसएलपी (दीवानी) संख्या 2004 सी.सी. संख्या 8071-8072/2002।

पटना उच्च न्यायालय के 1.10.2001 के निर्णय और आदेश से। दीवानी विनिर्दिष्ट आदेश याचिका संख्या 6941 और 6997/1988 में।

याचिकाकर्ताओं के लिए पी.एस. मिश्रा, तथागत एच. वर्धन, अमिताभ सी. मिश्रा, ध्रुव कुमार झा और सी.डी. सिंह।

उत्तरदाताओं के लिए सुनील रॉय, मनीष मोहन, बी.एम. प्रसाद, श्रीमती अनीता मोहन और उगरा शंकर प्रसाद।

न्यायालय का निर्णय आर. सी. लाहोटी, न्यायमूर्ति द्वारा दिया गया था।

पटना उच्च न्यायालय की खंडपीठ लोकहित में सुनवाई कर रही है तथा संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर रही है। उच्च न्यायालय को जल निकासी प्रणाली, सीवरेज प्रणाली, पेयजल आपूर्ति प्रणाली, सड़क पर बनी कर्ब तथा फुटपाथों के पुनर्विन्यास की दयनीय स्थिति पर चिंता है। उच्च न्यायालय ने शहरीकरण और शहरी नियोजन को नियंत्रित करने वाले अनुशासन के अनुरूप अन्य सड़कों के लिए एक उदाहरण स्थापित करने हेतु एक सड़क को आदर्श वास क्षेत्र के रूप में चुना है, ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि भविष्य की पीढ़ियों को नागरिकों के लाभ के लिए नागरिक सुविधाओं युक्त एक सुरक्षित, नागरिक शहर मिले। उच्च न्यायालय सतत परमादेश की प्रकृति के आदेश जारी करता रहा है और अनुपालन की निगरानी भी कर रहा है। 1.10.2001 को, उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अंतरिम आदेश पारित किया: (ए) सड़क का संरेखण सीधा या सड़क के अनुरूप

एक हल्का वक्र है और पीछे हटने की सीमाएँ, जैसा कि न्यायालय को दिए गए विवरण के स्तंभ 3 में इंगित किया गया है, सड़क के केंद्र से बनाए रखी जाती हैं। सड़क के दोनों ओर 110 फीट की दूरी से अदृश्य इमारतों की पहचान की जानी है; (बी) तूफानी-जल निकासी की योजना इस प्रकार बनाई जाएगी कि वे 28 सितंबर, 2001 के आदेश के संदर्भ में दिखाई गई और मापी गई छह संपत्तियों के सीमा संरेखण से सटे हों; (सी) किनारे/फुटपाथ/साइड वॉक तूफानी-जल निकासी और पक्की सड़क की वाहन चौड़ाई के बीच एक सीधी रेखा में समानांतर चलेंगे; और (डी) बेली रोड के किसी भी चौराहे पर, सड़क के केंद्र से 100 मीटर के व्यास को संरक्षित क्षेत्र के रूप में नियोजित किया जाएगा और पीछे हटने की सीमाएँ इस प्रकार रखी जाएंगी कि कोई अदृश्य बिंदु या दृष्टि में बाधा न हो। इस परिधि से न्यूनतम मुखौटा और पीछे हटने की सीमा 110 फीट पर बनाए रखा जाना है। उच्च न्यायालय के समक्ष कार्यवाही और उसमें पारित आदेशों का एक प्रभाव यह था कि पूरी सार्वजनिक सड़क यानी बेली रोड पर, सड़क के केंद्र से दोनों ओर 110 फीट के भीतर, सभी निर्माण कार्य पर रोक लगा दी गई थी। स्थानीय प्राधिकारियों को उक्त क्षेत्र की सीमा के भीतर निर्माण के लिए कोई भी नक्शा स्वीकृत करने से रोक दिया गया।

ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ निर्माता/विकासकर्ता निर्माण गतिविधि में लगे हुए थे और 1.10.2001 के अंतरिम आदेश का प्रभाव यह हुआ कि उनकी निर्माण गतिविधि काफी हद तक ठप हो गई। 17.9.2002 को, उनमें से सात ने उच्च न्यायालय के 1.10.2001 के आदेश के विरुद्ध विशेष अनुमति याचिका (एसएलपी) दायर करते हुए इस न्यायालय में एक याचिका दायर की। वाद शीर्षक में उन्होंने स्वयं को हस्तक्षेपकर्ता/याचिकाकर्ता के रूप में वर्णित किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि वे उन कार्यवाहियों में पक्षकार नहीं थे, और न ही उन्हें सूचित किया गया था, जिसमें 1.10.2001 का आदेश पारित हुआ था; कम से कम वे एसएलपी के साथ संलग्न एसएलपी दायर करने की अनुमति मांगने वाले अपने आवेदन में ऐसा ही कहते हैं। जब यह मामला 28.10.2002 को इस न्यायालय के समक्ष सुनवाई के

लिए आया, तो न्यायालय द्वारा उठाया गया और याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता को दिया गया एक स्पष्ट प्रश्न यह था कि, यदि उनके स्वयं के दर्शाने के अनुसार, वे उच्च न्यायालय के समक्ष पक्षकार के रूप में अभियुक्त नहीं थे, तो उन्हें उच्च न्यायालय में अपना मामला और शिकायत, यदि कोई हो, क्यों नहीं प्रस्तुत करनी चाहिए, और उच्च न्यायालय द्वारा पारित 1.10.2001 के अंतरिम आदेश को अपास्त या संशोधित करने के लिए प्रार्थना क्यों नहीं करनी चाहिए। याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने इस न्यायालय के ध्यान में लाया कि याचिकाकर्ताओं ने पहले ही उच्च न्यायालय के समक्ष 1.10.2001 के अंतरिम आदेश को अपास्त करने के लिए आवेदन कर दिया था। इस न्यायालय ने, अपने 28.10.2002 के आदेश में, यह कहा - "मामले के इस दृष्टिकोण में, हम इन याचिकाओं पर विचार करने के इच्छुक नहीं हैं और उन्हें तदनुसार खारिज किया जाता है। याचिकाकर्ता उक्त मामले की सुनवाई में तेजी लाने के लिए माननीय मुख्य न्यायाधीश से संपर्क कर सकते हैं। हमें आशा है और विश्वास है कि मामले का शीघ्र निर्णय किया जाएगा।"

5 अप्रैल, 2003 को, याचिकाकर्ताओं ने इस न्यायालय में अंतरिम आवेदन संख्या 8-9, 2003 दायर किए, जिसमें प्रस्तुत किया गया कि 1.10.2001 के अंतरिम आदेश को निरस्त करने के लिए उनके आवेदन पहले ही 16/17.7.2002 को दायर किए जा चुके थे, लेकिन आज तक उनके स्थगन निरस्तीकरण आवेदन की सुनवाई के लिए कोई तारीख तय नहीं की गई है। आवेदन में यह भी उल्लेख किया गया है कि उल्लेख पर्ची जमा की गई थी, जिन्हें पीठ उपलब्ध होने पर प्रस्तुत करने के लिए अभिलेख पर लिया गया था। यह भी कहा गया कि इस न्यायालय के 28.10.2002 के आदेश के बाद, ऐसी उल्लेख पर्ची 21.11.2002, 12.12.2002 और 16.1.2003 को माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष दायर की गई थी, जिसमें मामले को शीघ्र सूचीबद्ध करने की प्रार्थना की गई थी, लेकिन कोई आदेश पारित नहीं किया गया। आवेदन में किए गए अभिकथनों को शपथ पत्र और दस्तावेजों से समर्थित किया गया है, जिनमें अधिकतर उच्च न्यायालय की कार्यवाही के अभिलेख की प्रतियां शामिल हैं।

आवेदकों ने एसएलपी का निस्तारण करने वाले इस न्यायालय के आदेश को वापस लेने, एसएलपी को सुनवाई के लिए लेने और पटना उच्च न्यायालय द्वारा पारित 1.10.2001 के अंतरिम आदेश के परिचालन पर स्थगन देने की मांग की थी। आवेदकों ने आवेदन के साथ एक चार्ट (अनुलग्नक पी-8) संलग्न किया, जिसमें मौद्रिक नुकसान की राशि निर्धारित की गई थी, जो वे पहले ही झेल चुके थे और महीने-दर-महीने झेलते जा रहे थे क्योंकि उच्च न्यायालय द्वारा स्थगन निरस्तीकरण करने के उनके आवेदनों को सुनवाई के लिए नहीं लिया जा रहा था।

इस न्यायालय ने आवेदनों पर सूचना-पत्र जारी करने का निर्देश दिया। 3.11.2003 को, माननीय भारत के मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता वाली तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने, उपस्थित पक्षकारों के अधिवक्ता को सुनने के बाद, और यह सुनिश्चित करने की अपनी उत्सुकता में कि याचिकाकर्ताओं द्वारा किए गए अभिकथन सही थे, उच्च न्यायालय से एक प्रतिक्रिया मांगी। न्यायालय यह सुनिश्चित करना चाहता था कि क्या याचिकाकर्ताओं ने कोई आवेदन दायर किया था और क्या उन्हें सुनवाई के लिए सूचीबद्ध नहीं किया गया था। जाहिर है, इस न्यायालय का 3.11.2003 को आदेश पारित करने का उद्देश्य तथ्यों का पता लगाना था, साथ ही याचिकाकर्ताओं के 'स्थगन निरस्तीकरण आवेदनों' की शीघ्र सूचीबद्धता की आवश्यकता पर बल देना भी था, यदि वह पहले से नहीं की गई थी। इस न्यायालय के आदेश को इस न्यायालय की निबंधन द्वारा उच्च न्यायालय के महानिबंधक को संप्रेषित किया गया था।

ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय के महानिबंधक ने एक नोट तैयार किया और उसे पटना उच्च न्यायालय के माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष विचार के लिए प्रस्तुत किया। ऐसा प्रतीत होता है कि नोट पर प्रशासनिक पक्ष पर नहीं, बल्कि न्यायिक पक्ष पर विचार किया गया। उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय के 3.11.2003 के आदेश पर कड़ी आपत्ति जताई, यह धारणा बनाते हुए कि इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय को - एक संस्था

के रूप में - 'स्पष्टीकरण देने का निर्देश' दिया है। खंडपीठ द्वारा पारित 3.12.2003 के आदेश के कुछ अंश इस प्रकार हैं:

"यह दुर्भाग्यपूर्ण है, बहुत दुर्भाग्यपूर्ण, कि एक समाप्त और तय मामले को पुनर्जीवित किया गया और हस्तक्षेपकर्ता के आवेदन पर अभिलेख रूम से मंगवाया गया, जो किसी भी मामले में वाद का पक्षकार तक नहीं था, और उच्च न्यायालय से एक स्पष्टीकरण मांगा गया है। उच्च न्यायालय को एक अर्ध-वादी की शिकायत पर सर्वोच्च न्यायालय को एक प्रतिक्रिया देने के लिए कहा गया है, जिसने स्वयं उच्च न्यायालय में कोई मामला दायर नहीं किया है, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय से प्रमाण पत्र मांगता है कि उच्च न्यायालय ने आपत्ति जताई है। उच्च न्यायालय कैसे जवाब दे? खंडपीठ सर्वोच्च न्यायालय को स्पष्टीकरण दे रही है? उच्च न्यायालय के महानिबंधक, सर्वोच्च न्यायालय के महानिबंधक को एक व्याख्यात्मक नोट दायर कर रहे हैं? क्या उच्च न्यायालय को एक अधिवक्ता नियुक्त करना चाहिए? क्या उच्च न्यायालय ने किसी निर्णय में त्रुटि की है? क्या उच्च न्यायालय एक विरोधी पक्ष है? यह न्यायालय यह इंगित करने के लिए विवश है कि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायालय कक्ष में झूठी गवाही हुई है। असत्य कथन दिए गए हैं। सार्वजनिक न्याय की पवित्रता को दो न्यायालयों, उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय में अपवित्र किया गया है।

महानिबंधक की सूचना-पत्र, जिसमें इस बेईमानी का विवरण है, इस बात का आँखें खोलने वाला होना चाहिए कि कैसे असत्य कथनों द्वारा सार्वजनिक न्याय को अपवित्र किया गया है। और एक बार जब न्याय की धारा दूषित हो जाती है, तो यह एक जहरीली नदी की तरह होती है जो जीवन देने के बजाय मार डालती है।"

XXX

XXX

XXX

XXX

इस मामले में, एक हस्तक्षेपकर्ता ने सर्वोच्च न्यायालय को यह चित्र दिया कि इस मामले में उच्च न्यायालय में कोई कार्यवाही नहीं चल रही है, जो असत्य है। कार्यवाहियाँ नियमित रूप

से चल रही हैं।

सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय से "प्रतिक्रिया" माँगी है, यह उल्लेख करते हुए कि याचिकाकर्ताओं द्वारा शीघ्र सुनवाई हेतु उल्लेख किए जाने के बावजूद ऐसा आरोप लगाया गया है। यह वही प्रतिक्रिया है। यदि यह प्रतिक्रिया नहीं माँगी गई होती, तो संभवतः इस न्यायालय को इसे देने का कोई कारण ही नहीं मिलता। न्यायालय अपने आदेशों के पीछे भागने के लिए नहीं होते; वे तो पूर्ण निरपेक्षता के भाव से अपने दायित्वों का निर्वहन करने के लिए होते हैं। प्रतिपक्षी पक्षों का दायित्व है कि वे न्यायालय के समक्ष असत्य को उजागर करें, किंतु यह भी एक अपवादात्मक स्थिति है; *असत्य कथन न्यायालय की कार्यवाहियों की सामान्य स्थिति होने की अपेक्षा नहीं की जाती है।*

फिर, एक जनहित याचिका में, सार्वजनिक हित के लिए एक कारण लाने वाला और सकारात्मक कार्रवाई की उम्मीद करने वाला एक वित्तीय रूप से कमजोर पक्षकार न्यायालय का दरवाजा खटखटाने के दिन को पछतावा कर सकता है, यदि कार्यवाहियाँ एक बाहरी व्यक्ति द्वारा एक उच्च न्यायालय में मुद्दों को विकृत करके निरस्त कर दी जाती हैं।

जिस मामले में "जवाब" मांगा जा रहा है, वह शहरी नियोजन से जुड़ा है।

XXX

XXX

XXX

XXX

यह न्यायालय स्वतंत्र रूप से बोलने की छूट ले रहा है क्योंकि जवाब मांगा गया था। महानिबंधक एक दुविधा में थे और उन्होंने न्यायालय से पूछा कि उन्हें जवाब कैसे प्रस्तुत करना चाहिए। वह एक पदाधिकारी हैं, क्या उन्हें इसे सर्वोच्च न्यायालय के महानिबंधक को देना चाहिए? वह जानना चाहते थे कि क्या न्यायाधीशों को एक स्पष्टीकरण देना चाहिए? एकमात्र उत्तर इसी में निहित है कि एक अभिलेख न्यायालय क्या है। यदि अपीलीय क्षेत्राधिकार में, जो भारत का सर्वोच्च न्यायालय है, संविधान न्यायालय के समक्ष तथ्य शुद्ध हों, तो ये सभी मुद्दे उत्पन्न नहीं होंगे। यदि सर्वोच्च न्यायालय में असत्य कथन याचिकाएँ हैं, और सर्वोच्च न्यायालय को यह महसूस होता है कि ऐसी कोई स्थिति मौजूद हो सकती है,

तो पता लगाने के कई अन्य तरीके हैं। एक त्रुटि करने वाले वादी के उकसाने पर उच्च न्यायालय से स्पष्टीकरण मांगना एक बहुत दुखद दिन होगा।

XXX

XXX

XXX

XXX

इस न्यायालय को यह आदेश अंकित करते हुए बहुत दुख है। चूंकि अभिलेख छिपाने और असत्य पर बहस करने और झूठी दलीलें सर्वोच्च न्यायालय के न्यायालय कक्ष में हुई हैं, जो सार्वजनिक न्याय के विरुद्ध अपराधों के समतुल्य हो सकती हैं। जनहित और न्याय के हित में यह उचित होगा कि इस आदेश की एक प्रति महानिबंधक द्वारा भारत के सर्वोच्च न्यायालय के महानिबंधक को भेजी जाए ताकि इसे (ए) माननीय न्यायालय के समक्ष रखा जाए जिसने 28 अक्टूबर 2002 और 3 नवंबर 2003 को आदेश पारित किए थे और (बी) भारत के महान्यायवादी के समक्ष रखा जाए।

उच्च न्यायालय, जिसके अध्यक्ष माननीय मुख्य न्यायाधीश थे, द्वारा पारित खंडपीठ के आदेश की अंतिम कंडिका में निहित निर्देश के मद्देनजर, और भारत के माननीय मुख्य न्यायाधीश के निर्देशों के तहत, मामला हमारी इस पीठ के समक्ष रखा गया है। हमने पटना उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित आदेश का अवलोकन किया है।

कुछ प्रश्न विचारणीय हैं। क्या इस न्यायालय द्वारा, संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अपने अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय को एक संसूचना प्रेषित किए जाने का निर्देश नहीं दिया जा सकता था, जिसका उद्देश्य (i) तथ्यों का पता लगाना तथा (ii) दिनांक 28.10.2002 के आदेश में निहित निर्देश का अनुपालन सुनिश्चित करना होता? क्या उच्च न्यायालय की खंडपीठ, विधि की दृष्टि से तथा न्यायिक औचित्य के मानदंडों पर, वे सभी टिप्पणियाँ करने में न्यायोचित थी, जिन्हें ऊपर उद्धृत एवं पुनरुत्पादित किया गया है? क्या उच्च न्यायालय द्वारा भारत के उच्चतम न्यायालय के महापंजीयक को यह निर्देश देना उचित था कि उसकी संसूचना इस न्यायालय की किसी विशिष्ट पीठ के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत की जाए? इन सूक्ष्म प्रश्नों ने हमें इस विषय पर विचार करने तथा यह

अन्वेषण करने का अवसर प्रदान किया जाना किया है कि संविधान के अधीन कार्यरत दो महान न्यायिक संस्थाओं, अर्थात् उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों, के मध्य पारस्परिक संबंध का स्वरूप क्या है।

न्यायपालिका के लिए तैयार की गई संवैधानिक योजना के अन्तर्गत, सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों अभिलेख न्यायालय हैं। उच्च न्यायालय, सर्वोच्च न्यायालय के 'अधीनस्थ' न्यायालय नहीं है। एक तरह से, उच्च न्यायालय में निहित न्यायिक शक्तियों का दायरा अधिक व्यापक है क्योंकि उसके पास संविधान के भाग III द्वारा प्रदत्त किसी भी अधिकार के प्रवर्तन के लिए और *किसी अन्य उद्देश्य के लिए* संविधान के अनुच्छेद 226 द्वारा प्रदत्त सभी विशेषाधिकार विनिर्दिष्ट आदेश जारी करने का क्षेत्राधिकार है, जबकि सर्वोच्च न्यायालय का विशेषाधिकार विनिर्दिष्ट आदेश जारी करने का मूल क्षेत्राधिकार केवल मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन और राष्ट्रपति चुनाव या अंतर-राज्य विवादों जैसे कुछ मामलों से निस्तारण तक ही सीमित रहता है, जिनकी सुनवाई और निर्धारण उच्च न्यायालयों द्वारा करने की संविधान में परिकल्पना नहीं की गई है। उच्च न्यायालय, संविधान के अनुच्छेद 227 के अन्तर्गत सभी अधीनस्थ न्यायालयों और न्यायाधिकरणों पर अधीक्षण की शक्ति का प्रयोग करता है; सर्वोच्च न्यायालय को अधीक्षण की कोई शक्ति प्रदान किया जाना नहीं की गई है। यदि सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों को न्याय प्रशासन में भाई माना जाए, तो उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार बड़ा है, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय फिर भी बड़ा भाई बना रहता है। कुछ प्रावधान हैं जो सर्वोच्च न्यायालय को उच्च न्यायालयों पर एक बढ़त देते हैं, और पदानुक्रम में एक श्रेष्ठ स्थान प्रदान किया जाना करते हैं। जहां तक अपीलीय क्षेत्राधिकार का संबंध है, सभी दीवानी और दांडिक मामलों में, सर्वोच्च न्यायालय अपील का उच्चतम और अंतिम न्यायालय है। यह विधि का अंतिम व्याख्याकार है। अनुच्छेद 139-ए के अन्तर्गत, सर्वोच्च न्यायालय एक उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित किसी भी मामले को दूसरे उच्च न्यायालय में स्थानांतरित कर सकता है या मामले को स्वयं

वापस ले सकता है। अनुच्छेद 141 के अन्तर्गत, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून भारत के क्षेत्र के भीतर उच्च न्यायालयों सहित सभी न्यायालयों पर बाध्यकारी होगा। अनुच्छेद 144 के अन्तर्गत, भारत के क्षेत्र में सभी प्राधिकारी, दीवानी और न्यायिक - और इसमें उच्च न्यायालय भी शामिल होगा - सर्वोच्च न्यायालय की सहायता में कार्य करेंगे।

एक एकीकृत पदानुक्रमित न्यायिक प्रणाली में जिसे भारत ने अपने संविधान के अन्तर्गत स्वीकार किया है, ऊर्ध्वाधर रूप से सर्वोच्च न्यायालय को उच्च न्यायालयों के ऊपर रखा गया है। यही तथ्य कि संविधान उच्च न्यायालयों पर सर्वोच्च न्यायालय को एक अपीलीय शक्ति प्रदान किया जाना करता है, कुछ परिणाम स्वाभाविक रूप से उत्पन्न और अनुसरण करते हैं। अपील का अर्थ अपने स्वाभाविक और साधारण अर्थ में किसी भी अधीनस्थ न्यायालय या न्यायाधिकरण से श्रेष्ठ न्यायालय में निर्णय की दृढ़ता और अधीनस्थ न्यायालय या न्यायाधिकरण की कार्यवाहियों का परीक्षण करने के उद्देश्य से एक मामले को हटाना है। श्रेष्ठ मंच के पास अपील किए गए मंच के डिक्री या आदेश को उलटने, पुष्टि करने, रद्द करने या संशोधित करने का क्षेत्राधिकार होगा और पुनर्विचारण की स्थिति में अधीनस्थ मंच को मामले की पुनःसुनवाई करनी होगी और पुनर्विचारण के आदेश के साथ आने वाले ऐसे निर्देशों का अनुपालन करना होगा। अपीलीय क्षेत्राधिकार स्वाभाविक रूप से अपने साथ सुधारात्मक निर्देश जारी करने की एक शक्ति रखता है जो अधीनस्थ मंच पर बाध्यकारी होती है और बाद वाले की ओर से ऐसे निर्देशों का पालन करने में विफलता या ऐसे निर्देशों के औचित्य पर अनादर दिखाना या प्रश्न उठाना - यह स्पष्ट है - न्याय प्रशासन में पदानुक्रमित प्रणाली के लिए विनाशकारी होगा। न्याय के चाहने वाले और समाज दोनों में विश्वास खो देंगे।

शंकर रामचंद्र अभयंकर बनाम कृष्णाजी दत्तात्रेय बापट, एआईआर (1970) एससी 1 में, इस न्यायालय ने बताया कि अपील श्रेष्ठ न्यायालय में प्रवेश करने और अधीनस्थ न्यायालय की त्रुटि को दूर करने के लिए उसकी सहायता और मध्यस्थता का आवाहन करने का

अधिकार है। अपीलीय क्षेत्राधिकार का गठन करने वाले दो महत्वपूर्ण सिद्धांत हैं: (i) श्रेष्ठ और अधीनस्थ न्यायालय के संबंध का अस्तित्व; और (ii) बाद वाले के निर्णयों की समीक्षा करने की पूर्व वाले में शक्ति। ऐसा क्षेत्राधिकार विभिन्न रूपों में प्रयोग किए जाने में सक्षम है। अपील दीवानी कानून की उत्पत्ति की एक प्रक्रिया है और यह कानून के साथ-साथ तथ्यों को समीक्षा और पुनःपरीक्षण के लिए पूरी तरह से अधीन करते हुए एक मामले को हटा देती है।

अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रदान किया जाना किया जाना स्वयं ही कुछ परिणाम लेकर आता है। एक प्रमुख मौलिक क्षेत्राधिकार का प्रदान किया जाना किया जाना, उस शक्ति के आवश्यक सहगामी के रूप में, ऐसी अन्य आनुषंगिक और सहायक शक्तियों का प्रयोग करने की शक्ति भी साथ लाता है, जिनके बिना प्रमुख शक्ति का प्रदान किया जाना निरर्थक हो जाएगा। जैसा कि प्रिवी काउंसिल के उनके लॉर्डशिप्स ने *नागेंद्र नाथ डे और एक अन्य बनाम सुरेश चंद्र डे और अन्य*, एआईआर (1932) प्रिवी काउंसिल 165 (सर दिनशाह मुल्ला पाँच न्यायाधीशों की पीठ की ओर से बोलते हुए) में माना था, एक अपील एक अपीलीय न्यायालय से किसी अधीनस्थ न्यायालय के निर्णय को अपास्त करने या संशोधित करने के लिए एक पक्षकार द्वारा किया गया एक आवेदन है। अपील अनियमित या अक्षम होने पर भी अपील रहना बंद नहीं होती। *चप्पन बनाम मोइदीन कुट्टी*, (1899) 22 आईएलआर मद्रास 68 (पृष्ठ 80 पर) में पूर्ण पीठ के एक सदस्य के रूप में सुब्रमण्य अय्यर, न्यायाधीश ने अपनी राय को अभिलेख पर रखते हुए, *अन्य बातों के साथ-साथ* यह कहा कि अपील "पुनः-परीक्षण या समीक्षा के लिए एक मामले या वाद को अधीनस्थ से श्रेष्ठ न्यायाधीश या न्यायालय में हटाना" है। वॉर्टन के लॉ लेक्सिकॉन के अनुसार, किसी मामले या वाद को इस प्रकार हटाना अधीनस्थ न्यायालय के निर्णय की दृढ़ता का परीक्षण करने के उद्देश्य से होता है। अपील के इस विशेष अर्थ के अनुरूप, 'अपीलीय क्षेत्राधिकार' का अर्थ है "अधीनस्थ न्यायालय के निर्णय की समीक्षा करने की श्रेष्ठ न्यायालय की शक्ति"। "यहाँ दो चीजें हैं जो अपीलीय क्षेत्राधिकार का गठन करने के लिए आवश्यक हैं, वे हैं श्रेष्ठ और अधीनस्थ

न्यायालय के संबंध का अस्तित्व और बाद वाले के निर्णयों की समीक्षा करने की पूर्व वाले की शक्ति। इसे स्टोरी द्वारा अच्छी तरह से रखा गया है: 'अपीलीय क्षेत्राधिकार का आवश्यक मानदंड यह है कि यह पहले से ही स्थापित एक कारण में कार्यवाहियों को संशोधित और सही करता है और उस कारण को बनाता नहीं है। न्यायिक न्यायाधिकरणों के संदर्भ में अपीलीय क्षेत्राधिकार, इसलिए, अनिवार्य रूप से यह निहित करता है कि विषय-वस्तु पहले से ही किसी अन्य न्यायालय द्वारा स्थापित किया जा चुका हो और उस पर कार्रवाई की जा चुकी है, जिसके निर्णय या कार्यवाहियों को संशोधित किया जाना है,' (संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान पर टिप्पणियाँ, खंड 1761)।

हमारे हाथों में मुद्दे के समाधान का मार्गदर्शन करने वाले प्राधिकार के उपरोक्त कथनों को अनुकूलित करते हुए हम यह कहने का साहस कर सकते हैं कि सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों के संवैधानिक रूप से एक दूसरे से स्वतंत्र होने और दोनों के अभिलेख न्यायालय होने के बावजूद, अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग की सीमा तक निश्चित रूप से सर्वोच्च न्यायालय एक श्रेष्ठ क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है और इसलिए उच्च न्यायालयों से एक श्रेष्ठ न्यायालय है, जो उस संदर्भ में एक अधीनस्थ क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हैं।

एक अपीलीय मंच बनाने का क्या महत्व है? और न्याय प्रशासन प्रणाली में इस तरह के पदानुक्रम के निर्माण से क्या हासिल करने की कोशिश की जाती है? "

"अपीलीय न्यायालय न्यायालय में न्यायिक व्यवहार के उच्च मानकों को सुरक्षित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।.....इसे ध्यान में रखते हुए, न्यायाधीशों की जाँच में अपीलीय न्यायालय की भूमिका को कम नहीं आँका जाना चाहिए।.....अपीलीय न्यायालय खुद को एक अनुशासनात्मक कार्य पूरा करने वाला मानता है।.....अपीलीय न्यायालय अपनी आलोचना को सावधानी से वाक्यांशबद्ध करता है। न्यायालय आमतौर पर यह स्पष्ट करता है कि उन्हें इस बात पर संदेह नहीं है कि 'न्यायाधीश सर्वोत्तम उद्देश्यों से प्रेरित थे' या 'न्याय करने की तीव्र इच्छा में एक न्यायाधीश गलती कर सकता है', लेकिन वे

ऐसी भाषा का उपयोग करते हैं जो यह सुनिश्चित करने के लिए काफी स्पष्ट होती है कि जिस न्यायाधीश को आलोचना संबोधित की गई है, साथ ही अन्य न्यायाधीशों को भी उनका संदेश मिल जाए।" (जजेज ऑन ट्रायल, शिमोन शेत्रीट, पृष्ठ 201-202 देखें)। "न्यायिक आचरण की जाँच करने और न्यायालय में न्यायिक व्यवहार के उच्च मानकों को सुरक्षित करने में अपीलीय न्यायालय की भूमिका बहुआयामी है। अपीलीय न्यायालय विशिष्ट मामलों में न्यायिक कदाचार की निंदा और आलोचना करता है और ऐसे कदाचार के परिणामस्वरूप होने वाली अन्याय को सही करता है। चाहे वह निर्णय को उलटता है, दोषसिद्धि को अभिखंडित करता है, सजा को कम करता है, या किसी भी तरीके से निर्णय को बदलता है, कदाचार की अस्वीकृति और निंदा न्यायालयों में सार्वजनिक विश्वास को बहाल करती है जो अन्यथा क्षीण हो सकता था। पीड़ित या पूर्वाग्रहित पक्षकार, और आम जनता, एक विशेष न्यायाधीश के कदाचार को संपूर्ण न्यायपालिका पर आरोपित करने के लिए लुभा सकती है। अपीलीय न्यायालय की अस्वीकृति और आलोचना, भले ही निर्णय में संशोधन न किया गया हो, ऐसे खतरे को खत्म कर देती है और न्याय के तराजू को उनके उचित संतुलन में बहाल कर देती है।" (वही, पृष्ठ 203-204)।

भारत के संविधान के अध्याय IV, जिसका शीर्षक - संघ न्यायपालिका है, अनुच्छेद 132 से 136 तक सर्वोच्च न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार से संबंधित हैं। इन सभी अनुच्छेदों में से, यह अनुच्छेद 136 है जिसे व्यापकतम संभव शब्दों में वाक्यांशबद्ध किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय में किसी भी न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए किसी भी प्रकार के निर्णय या आदेश के विरुद्ध और किसी भी कारण या मामले में विशेष अनुमति दिए जाने के अधीन अपीलीय क्षेत्राधिकार ग्रहण करने पर प्रयोग किए जाने वाले एक पूर्ण क्षेत्राधिकार को समाहित और निहित किया गया है। यह संविधान द्वारा न्यायालय में निहित एक असाधारण क्षेत्राधिकार है, जिस पर निहित विश्वास और भरोसा है और इस क्षेत्राधिकार के प्रयोग में अत्यंत सावधानी और सतर्कता बरती जानी है। अनुच्छेद 136 किसी पक्षकार को

अपील का अधिकार प्रदान किया जाना नहीं करता है, बल्कि सर्वोच्च न्यायालय में एक विशाल विवेक निहित करता है जिसका उद्देश्य न्याय, कर्तव्य की पुकार और अन्याय को मिटाने के विचारों द्वारा प्रयोग किया जाना है।

सर्वोच्च न्यायालय पर प्रदत्त क्षेत्राधिकार की सीमा और आयाम को मुख्य न्यायाधीश एम.सी. महाजन ने *ढाकेश्वरी कॉटन मिल्स बनाम आयकर आयुक्त, पश्चिम बंगाल*, एआईआर (1955) एससी 65 के मामले में अच्छी तरह से सामने लाया था, जिसमें उन्होंने कहा था - "संविधान के प्रावधान अनुच्छेद 136 द्वारा इस न्यायालय में निहित विवेकाधीन क्षेत्राधिकार के प्रयोग पर सीमाओं को किसी भी सटीकता के साथ परिभाषित करना संभव नहीं है। सीमाएं, जो भी हों, स्वयं शक्ति की प्रकृति और चरित्र में निहित हैं। यह एक असाधारण और अतिव्यापी शक्ति होने के कारण, स्वाभाविक रूप से इसे संयम से और सावधानी से और केवल विशेष और असाधारण परिस्थितियों में ही प्रयोग किया जाना है। इससे परे किसी भी निर्धारित सूत्र या नियम द्वारा इस शक्ति के प्रयोग को रोकना संभव नहीं है।...हालांकि, यह स्पष्ट है कि जब न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि किसी व्यक्ति के साथ मनमाने ढंग से व्यवहार किया गया है या भारत के क्षेत्र के भीतर किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण ने किसी वादी को उचित व्यवहार नहीं दिया है, तो तथ्यों के निष्कर्ष की अंतिमता या अन्यथा जैसे किसी भी प्रकार की तकनीकी बाधाएं इस शक्ति के प्रयोग के रास्ते में खड़ी नहीं हो सकती हैं क्योंकि इस अनुच्छेद का पूरा इरादा और उद्देश्य यह है कि न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह यह देखे कि न्यायालयों और न्यायाधिकरणों के निर्णयों से अन्याय स्थायी नहीं रहता या किया नहीं जाता है क्योंकि कुछ कानूनों ने इन न्यायालयों या न्यायाधिकरणों के निर्णयों को अंतिम और निर्णायक बना दिया है।"

संविधान के संस्थापकों ने देश में न्याय वितरण प्रणाली को सामग्री में एक सजातीय के रूप में तैयार किया, स्वतंत्रता और पदानुक्रम दोनों का ध्यान रखा, और ऐसा करते समय संतुलन के तराजू को सम रखा। संघ न्यायपालिका और राज्य न्यायपालिका निस्संदेह एक

दूसरे से स्वतंत्र हैं, सिवाय क्षेत्राधिकार से संबंधित कुछ क्षेत्रों के, जैसा कि हमने पहले बहुत संक्षेप में इंगित किया है। हालांकि, साथ ही, हम अपीलीय पदानुक्रम पर जोर देने का विरोध नहीं कर सकते हैं, जो सही परिप्रेक्ष्य में जाँच करने पर, न्यायपालिका की स्वतंत्रता में मजबूती से योगदान देने वाला एक कारक है और प्रणाली के भीतर न्यायनिर्णयन में अंतिमता और किसी भी बाहरी हस्तक्षेप या सुधार से इसकी अलगाव को सुरक्षित करता है। नाजुक संतुलन को स्वतंत्रता और परस्पर संबंध द्वारा सावधानीपूर्वक तैयार और प्राप्त करने की मांग की गई है - दोनों सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के साथ-साथ मौजूद हैं। जैसा कि फ्रैंक एम. कॉफिन ने अपनी कृति 'ऑन अपील - कोर्ट्स, लॉयरिंग, एंड जजिंग' में उल्लेखित अभिव्यक्ति को उधार लेने के लिए 'तनाव के संबंध के साथ-साथ सहयोग के संबंध' भी हैं। वह कहते हैं, "इन संबंधों को नियंत्रित करने वाले विभिन्न सिद्धांतों के संवेदनशील और परिष्कृत अनुप्रयोग पर, हमारे संघवाद के अद्वितीय रूप का प्रभावी कामकाज बड़े हिस्से में निर्भर करता है।" (पृष्ठ 52-53 पर)।

25.7.1963 को वेस्टर्न इंडिया के अधिवक्ता संघ के शताब्दी समारोह के अवसर पर आयोजित शताब्दी व्याख्यान श्रृंखला में व्याख्यान देते हुए, मोतीलाल सी. सीतलवाड़ - महान भारतीय न्यायविद् ने संविधान के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका पर बात की और कहा - "अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत न्यायालय द्वारा अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग न्यायालय की बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता का प्रमाण है। वह अनुच्छेद न्यायालय को देश में सभी न्यायालयों और न्यायाधिकरणों के निर्णय की जाँच करने की एक अतिव्यापी शक्ति प्रदान किया जाना करता है, एक शक्ति जो प्रिवी काउंसिल द्वारा प्रयोग किए गए क्राउन विशेषाधिकार से बड़ी है और जिसे साधारण विधान द्वारा प्रतिबंधित करने में सक्षम नहीं है। न्यायालय ने उस अनुच्छेद के अन्तर्गत शक्ति पर सीमाओं को परिभाषित करने से इनकार कर दिया है और यह निर्धारित किया है कि ये इसकी असाधारण और अतिव्यापी प्रकृति में निहित थीं।" (शताब्दी स्मारिका, पृष्ठ 134)।

सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय को एक दूसरे के साथ कैसे व्यवहार करना है, खासकर जब सर्वोच्च न्यायालय उच्च न्यायालय द्वारा या उच्च न्यायालय में समाप्त या लंबित कार्यवाहियों पर अपने अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर रहा हो? संविधान ने दोनों संस्थानों के बीच क्षेत्राधिकार को स्पष्ट रूप से विभाजित किया है और ऐसा करते समय इन संस्थानों को एक दूसरे के लिए आपसी सम्मान रखना होगा। संविधान के निर्माताओं ने सर्वोच्च न्यायालय को उच्च न्यायालय को एक आदेश देने की शक्ति को विशेष रूप से प्रदान किया जाना करना आवश्यक नहीं समझा, क्योंकि वे दूरदर्शी और समझदार लोग थे। वे जानते थे कि सभी संवैधानिक पदाधिकारी और संस्थान, लोकतंत्र और संविधानवाद के अनुरूप मानदंडों और परंपराओं के सर्वोत्तम हित में कार्य करेंगे, जो संविधान में निर्धारित और पहचाने जाने योग्य हैं और इतिहास तथा न्यायाधीशों की पीढ़ियों द्वारा सौंपे गए हैं। यह अपेक्षित था कि हर कोई अपनी सीमाओं के भीतर रहेगा और अपनी सीमाओं का अतिलंघन नहीं करेगा ताकि आदर्श और मूल्य एक जीवंत वास्तविकता बने रहें और या तो एक घुसपैठ या एक भ्रम न बनें। संवैधानिक और लोकतांत्रिक संस्थान, एक दूसरे के पूरक और सहायक होते हुए, इन सौंपी गई परंपराओं को मजबूत करेंगे और ऐसी समृद्ध परंपराओं को विकसित करने में भी योगदान देंगे जिनका भविष्य द्वारा सम्मान और स्वागत किया जाएगा। इसका परिणाम संविधान के कार्य को मजबूत करने में होगा। संविधानवाद के क्षेत्रों में, परंपरा द्वारा पोषित पदाधिकारियों के बीच आपसी विश्वास और सम्मान के मूल्य, संबंध के नियमों को संहिताबद्ध करने की आवश्यकता को कम करते हैं। अनुभव से पता चलता है कि ऐसे नाजुक संबंध के किसी भी कठोर संहिताकरण का लाभ उन लोगों को होता है जो अपमान करने पर तुले होते हैं। एक कठोर लिखित कानून उस गरिमा को बनाए रखना कठिन बना देता है जिसे सही सोच वाले लोगों पर छोड़ना बेहतर और सही है जो उत्साह से दूसरों की गरिमा को बनाए रखते हैं जैसे वे अपनी रखते हैं।

संविधान के अन्तर्गत एक संस्था का दूसरी संस्था के साथ व्यवहार करते समय

गरिमा और शिष्टाचार का पालन करना होगा। कोई भी न्यायाधीश दूसरे न्यायाधीश की आलोचना नहीं करेगा और निश्चित रूप से कठोरता से नहीं करेगा। इससे किसी भी प्रकार के विचलन को शीघ्रतम और व्यापक हित में सही करने की आवश्यकता है। एक अपीलीय मंच का यह दायित्व है कि वह अपील के अधीन क्षेत्राधिकार द्वारा की गई नियम से ऐसी विपथन को ठीक करे, जिसे उसके ध्यान में लाया गया हो, और यदि वह ऐसा नहीं करता है तो वह अपने कर्तव्य में विफल होता है। निस्संदेह, सुधारात्मक कदम भी गरिमा और सम्मान के साथ सावधानीपूर्वक उठाया जाता है, न कि कठोर आलोचना के माध्यम से। डेविड पैनिक द्वारा उद्धृत एक उदाहरण संदर्भ और आदर के योग्य है। 1971 के एक मामले में न्यायाधीश लॉसन ने अपीलीय न्यायालय के एक पहले के निर्णय की शुद्धता पर संदेह करने के अपने कारण बताए। फिर भी, उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला, 'मैं उस पहले के मामले के निर्णय से बाध्य हूँ, हालांकि मैं यह कहने के लिए विवश हूँ, फिर से अत्यंत सम्मान के साथ, कि मेरा मानना है कि यह गलत तरीके से तय किया गया था'। अपीलीय न्यायालय बहुत नाखुश था। लॉर्ड जस्टिस डेविस ने 'लॉसन जे के लिए अत्यंत सम्मान के साथ' जवाब दिया, कि उन्होंने सोचा कि 'वे टिप्पणियाँ अनुपयुक्त थीं। यह असामान्य है, और, मैं कहने के लिए बाध्य हूँ, अवांछनीय है, मेरी राय में, पहली सुनवाई में बैठे एक न्यायाधीश के लिए यह राय व्यक्त करना, हालांकि यह स्वीकार करना कि वह इससे बाध्य है, कि इस न्यायालय का एक निर्णय, और एक काफी हालिया निर्णय, गलत था।' (न्यायाधीश, पृष्ठ 127-128)।

महान न्यायाधीश एवं विधिवेत्ता बेंजामिन एन. कार्डोजो ने एक कटु किन्तु सत्य बात कही है। न्यायाधीशों को इस बात के प्रति सावधान करते हुए कि न्यायाधीश के भीतर का पदाधिकारी उसके भीतर के मनुष्य को निगलने न पाए, बेंजामिन कार्डोजो कहते हैं कि अतीत में ऐसे न्यायाधीश हुए हैं जो इस दुर्भाग्य के शिकार हुए। तथापि, कार्डोजो के मन में केवल वह अहंकार नहीं है, जो कठोर एवं दमनकारी व्यवहार, वाणी की विस्फोटक तीव्रता आदि के रूप में प्रकट होता है। उनके शब्दों में— "ऐसी उच्छृंखल अभिव्यक्तियाँ कभी-कभी स्वभावगत

दुर्बलताओं का परिणाम होती हैं, जो न्यायपीठ के लिए सर्वथा अपरिचित नहीं हैं, यद्यपि सौभाग्यवश वे विरल हैं; किन्तु अधिकतर वे दुर्बलता अथवा अक्षमता के ऐसे रक्षात्मक उपाय होते हैं, जो अपनी कमियों के प्रति सचेत रहते हुए, अपनी कथित शक्ति के प्रदर्शन द्वारा लोगों का ध्यान उन कमियों से हटाने की आशा रखते हैं।” “वह सुप्त पशु हम सबके भीतर विद्यमान है, और यदि हम उसे अत्यधिक पोषित करें तो वह जाग उठेगा तथा उग्र हो जाएगा। पद का लोभी अधिकारी मनुष्य को निगल जाने का प्रयत्न करेगा। मैं आज आपके बीच उपस्थित होने के निमंत्रण को इस रूप में ग्रहण करता हूँ कि आपके मत में, मुझसे चाहे जितनी भी भूलें हुई हों—और मैं जानता हूँ कि वे मेरी अपेक्षा तथा स्मरण से भी अधिक रही हैं—कम-से-कम मैंने इस एक भूल से अपने को बचाए रखा है; मैंने पदाधिकारी को मनुष्य पर हावी नहीं होने दिया। मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि इस अत्यन्त साधारण उपलब्धि का मुझे कोई विशेष श्रेय मिलना चाहिए। ऐसे न्यायालय में, जहाँ शिष्टाचार और निष्पक्षता की परंपरा इतनी गहराई से स्थापित और दृढ़ है, जैसा कि अपीलीय न्यायालय में है, वहाँ पद के अहंकार से उत्पन्न इस प्रकार के दुराचरण का दोषी बनने के लिए किसी व्यक्ति को अत्यन्त कठोर स्वभाव का पापी होना पड़ेगा। किन्तु जब आप इस पर विचार करेंगे, तो पाएँगे कि सद्गुणों का महत्व उन पर मिलने वाले श्रेय के प्रतिलोमानुपाती होता है। हममें से कोई भी व्यक्ति हत्या जैसे अपराध से स्वयं को विरत रखने में किए गए आत्मसंयम पर गर्व नहीं करता; किन्तु यदि सद्गुण का महत्व ही उसके लिए मिलने वाले श्रेय का मापदंड होता, तो हम सभी अपने नैतिक उत्कृष्टता के गर्व से इतराते फिरते। अतः मैं स्वयं को केवल एक मनुष्य बने रहने जैसे अत्यन्त विनम्र सद्गुण पर गर्व करने का अधिकारी नहीं मानता।” (बेंजामिन नाथन कार्डोजो के चयनित लेखन, पृष्ठ 427-428)।

विधि प्रतिवेदनों में उपलब्ध भारतीय न्यायपालिका के केवल दो या तीन उदाहरणों का उल्लेख पर्याप्त होगा। *भारत बिल्डर प्रा. लि. बनाम पारिजात फ्लैट ओनर्स सहकारी आवास सोसायटी लि.*, (1999) 5 एससीसी 622 में, एक पूर्व विशेष अनुमति याचिका के निस्तारण

करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय से अपेक्षा की कि वह पुनर्विचार याचिका के माध्यम से उठाए गए प्रश्नों का निर्णय करे और यह आशा व्यक्त की कि उच्च न्यायालय "उक्त प्रश्नों पर विचार करेगा" तथा "पुनर्विचार याचिका की तकनीकी सीमाओं की परवाह किए बिना" उनका समाधान करेगा। उच्च न्यायालय ने पुनर्विचार आवेदन को खारिज कर दिया और *अन्य बातों के साथ-साथ* यह टिप्पणी की - "सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्देशित के रूप में जाँच किया जाने वाला मुद्दा वह मुद्दा नहीं है जो विचारण न्यायालय या अपीलीय न्यायालय में उठाया गया था और इस पुनर्विचार आवेदन में, पहली बार ऐसे एक नए मुद्दे में जाना हमारे लिए अनुमेय नहीं है। इसे देखते हुए हमें आवेदक के तर्कों में कोई योग्यता नहीं मिलती है और इसलिए पुनर्विचार आवेदन खारिज किए जाने योग्य है"। इस न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 144 का संदर्भ दिया और टिप्पणी की कि उच्च न्यायालय के लिए उन प्रश्नों का निर्णय करना अनिवार्य था जिन्हें इस न्यायालय के पहले के आदेश द्वारा निर्णय करने की आवश्यकता थी। उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त कर दिया गया और समीक्षा याचिका को इस न्यायालय द्वारा फिर से उच्च न्यायालय के अभिलेख पर बहाल करने का निर्देश दिया गया - "उच्च न्यायालय को इस न्यायालय के पहले के आदेश की आवश्यकता का ईमानदारी से पालन करना होगा।" *भारत अर्थ मूवर्स बनाम आयकर आयुक्त, कर्नाटक*, (2000) 6 एससीसी 645 में सर्वोच्च न्यायालय एक मामले की सुनवाई पर संलग्न था और उसने आयकर अपीलीय न्यायाधिकरण को मामले का एक पूरक विवरण तैयार करने का निर्देश जारी किया था ताकि इस न्यायालय को तथ्यों को सही ढंग से समझने और उस प्रकाश में कानून को तय करने में सक्षम बनाया जा सके। अनुपालन में न्यायाधिकरण लापरवाह था। इस पर न्यायालय के ध्यान में लाए जाने पर, इस न्यायालय ने टिप्पणी की - "संविधान का अनुच्छेद 144 भारत के क्षेत्र में सभी प्राधिकारियों, दीवानी और न्यायिक, को सर्वोच्च न्यायालय की सहायता में कार्य करने के लिए बाध्य करता है। न्यायाधिकरण द्वारा इस न्यायालय के निर्देशों का अनुपालन करने में विफलता की निंदा की जानी चाहिए। हम

न्यायाधिकरण से इस न्यायालय के निर्देशों के प्रति अधिक प्रतिक्रियाशील और अधिक संवेदनशील होने की अपेक्षा करते हैं। हम केवल इस टिप्पणी के साथ इस मामले में इस पहलू को छोड़ देते हैं।"

सहायक केंद्रीय उत्पाद शुल्क समाहर्ता, चंदन नगर, पश्चिम बंगाल बनाम इनलप इंडिया लिमिटेड और अन्य, (1985) 1 एससीसी 260 में इस न्यायालय ने एक पहले के मामले *सिलीगुडी नगर पालिका बनाम अमलेन्दु दास*, (1984) 2 एससीसी 436 से कुछ टिप्पणियों को दोहराया जो इस प्रकार पढ़ी जाती हैं - "हम उच्च न्यायालय का अनादर नहीं करते हैं जब ऐसे महत्वपूर्ण संस्थागत विचारों जैसे कि शिष्टाचार और सौहार्द को बनाए रखने की आवश्यकता के प्रति आज्ञाकारिता में ऐसे मामलों में स्व-नियंत्रित अनुशासन की आवश्यकता पर जोर देते हैं, हम आशा करते हैं कि हमें फिर कभी ऐसा कहने की आवश्यकता नहीं होगी कि "न्यायालयों की पदानुक्रमित प्रणाली" जो हमारे देश में मौजूद है, में "उच्च न्यायालय सहित प्रत्येक निचली श्रेणी" के लिए "उच्च श्रेणियों के निर्णयों को निष्ठापूर्वक स्वीकार करना आवश्यक है"। "न्यायालयों की पदानुक्रमित प्रणाली में यह अपरिहार्य है कि सर्वोच्च अपीलीय न्यायाधिकरण के निर्णय होते हैं जो न्यायपालिका के सभी सदस्यों की सर्वसम्मत स्वीकृति को आकर्षित नहीं करते हैं।...लेकिन न्यायिक व्यवस्था केवल तभी काम करती है जब किसी को अंतिम निर्णय लेने का अधिकार दिया जाए और वह अंतिम निर्णय, एक बार दिए जाने के बाद, निष्ठापूर्वक स्वीकार किया जाए।" अधीनस्थ न्यायालय की बेहतर बुद्धिमत्ता को ऊपर के न्यायालय की उच्च बुद्धिमत्ता के सामने हार माननी होगी। यही पदानुक्रमित न्यायिक प्रणाली की ताकत है। इसी तरह हम अंतरिम राहत प्रदान किया जाना करने की उच्च न्यायालय की शक्तियों की परिधि और विस्तार के प्रश्न में प्रवेश किए बिना अंतरिम आदेश पारित करने में उच्च न्यायालय के आत्म-अनुशासन की आवश्यकता पर बल देने में उच्च न्यायालय का अनादर नहीं करते हैं।" *कैसल कंपनी लिमिटेड बनाम ब्रूम*, (1972) 1 ऑल इंग्लैंड रिपोर्ट्स 801 में जो कहा गया था, उसका संदर्भ

देते हुए न्यायालय ने कहा - हम आशा करते हैं कि हमें फिर कभी ऐसा कहने की आवश्यकता नहीं होगी कि "न्यायालयों की पदानुक्रमित प्रणाली" जो हमारे देश में मौजूद है, में "उच्च न्यायालय सहित प्रत्येक निचली श्रेणी" के लिए "उच्च श्रेणियों के निर्णयों को निष्ठापूर्वक स्वीकार करना आवश्यक है"। "न्यायालयों की पदानुक्रमित प्रणाली में यह अपरिहार्य है कि सर्वोच्च अपीलीय न्यायाधिकरण के निर्णय होते हैं जो न्यायपालिका के सभी सदस्यों की सर्वसम्मत स्वीकृति को आकर्षित नहीं करते हैं।...लेकिन न्यायिक प्रणाली तभी काम करती है जब किसी को अंतिम शब्द कहने की अनुमति दी जाती है और वह अंतिम शब्द, एक बार बोल दिए जाने पर, निष्ठापूर्वक स्वीकार किया जाता है।" अधीनस्थ न्यायालय की बेहतर बुद्धिमत्ता को ऊपर के न्यायालय की उच्च बुद्धिमत्ता के सामने हार माननी होगी। यही पदानुक्रमित न्यायिक प्रणाली की ताकत है।" हालांकि अपने कथन को "यह जोड़ना अनावश्यक है" अभिव्यक्ति द्वारा अर्हता प्राप्त करते हुए; फिर भी न्यायालय ने अपने निर्णय में यह जोड़ने की आवश्यकता महसूस की कि अनुच्छेद 144 के अन्तर्गत भारत के क्षेत्र में सभी प्राधिकारी, दीवानी और न्यायिक (उच्च न्यायालयों सहित) सर्वोच्च न्यायालय की सहायता में कार्य करेंगे।

हम मुख्य न्यायाधीश चंद्रचूड़ की अध्यक्षता वाली एक संविधान पीठ द्वारा *पंजाब राज्य और अन्य बनाम जगदेव सिंह तलवंडी*, (1984) 1 एससीसी 596 में दिए गए निर्णय से संदर्भ के लिए उपयुक्त और बहुत शिक्षाप्रद अंश को उद्धृत और पुनः प्रस्तुत करना उचित समझते हैं। उद्धरण तथ्यात्मक पृष्ठभूमि का स्व-व्याख्यात्मक है और इस प्रकार है -

"हम इस अवसर पर यह बताना चाहेंगे कि उच्च न्यायालयों द्वारा बढ़ते हुए अपनाई गई प्रथा के कारण गंभीर कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं, जिसमें तर्कपूर्ण निर्णय के बिना अंतिम आदेश की घोषणा की जाती है। यह वांछनीय है कि अंतिम आदेश जिसे उच्च न्यायालय पारित करने का इरादा रखता है, उसे तर्कपूर्ण निर्णय घोषणा के लिए तैयार होने तक घोषित नहीं किया जाना चाहिए। मान लीजिए, उदाहरण के लिए, कि उच्च न्यायालय

द्वारा तर्कपूर्ण निर्णय के बिना एक अंतिम आदेश की घोषणा की जाती है कि एक घर को ध्वस्त किया जाएगा, या एक बच्चे की हिरासत एक माता-पिता को दूसरे के विपरीत सौंपी जाएगी, या गंभीर आरोप वाले व्यक्ति को बरी किया जाता है, या एक कानून असंवैधानिक है, या, जैसा कि इस वर्तमान मामले में है, एक निरुद्ध को निरोधता से रिहा किया जाता है। यदि ऐसे आदेशों को पारित करने का उद्देश्य उनके साथ शीघ्र अनुपालन सुनिश्चित करना है, तो वह उद्देश्य अक्सर पीड़ित पक्षकार द्वारा उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध इस न्यायालय में एक विशेष अनुमति याचिका (एसएलपी) दायर करके विफल हो जाता है। यह इस न्यायालय को एक दुविधा में डाल देता है क्योंकि, उच्च न्यायालय के तर्कों के लाभ के बिना, इस न्यायालय के लिए केवल आदेश को लागू करने की अनुमति देना कठिन है। परिणाम अनिवार्य रूप से यह होता है कि तर्कपूर्ण निर्णय दिए जाने तक उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के परिचालन को स्थगित करना पड़ता है।

यह सोचा जा सकता है कि ऐसे आदेश इस न्यायालय द्वारा पारित किए जाते हैं और इसलिए यही कारण है कि उच्च न्यायालयों को ऐसा क्यों नहीं करना चाहिए। हम सम्मानपूर्वक बताना चाहेंगे कि इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश अंतिम होते हैं और उनके विरुद्ध कोई अपील नहीं होती है। सर्वोच्च न्यायालय हमारे न्यायालयों के पदानुक्रम में अंतिम न्यायालय है। इसके अलावा, तर्कपूर्ण निर्णय के बिना आदेश इस न्यायालय द्वारा बहुत कम, असाधारण परिस्थितियों में पारित किए जाते हैं। उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश संविधान के अनुच्छेद 136 और संबंधित कानूनों के अन्य प्रावधानों के अन्तर्गत इस न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार के अधीन हैं। हमने इन टिप्पणियों को आवश्यक समझा ताकि एक ऐसी प्रथा जो बहुत वांछनीय नहीं है और जो कोई उपयोगी उद्देश्य प्राप्त नहीं करती है, वह अपनी वर्तमान शैशवावस्था से आगे न बढ़े।" (जोर दिया गया)

सर्वोच्च न्यायालय, अपने अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, निर्देश जारी करने के लिए बुलाया जाता है जो न केवल अपीलीय मंच के रूप में उसका विशेषाधिकार है बल्कि

अक्सर न्याय की मांगों को पूरा करने और अपीलीय शक्ति के प्रभावी प्रयोग के लिए एक आवश्यकता भी है। फिर भी, यह ऐसे 'निर्देशों' को जारी करने से सावधानीपूर्वक परहेज करता है और इसके बजाय वैकल्पिक और विनम्र अभिव्यक्तियों का उपयोग करता है जैसे - "हम उच्च न्यायालय से अनुरोध करते हैं", "उच्च न्यायालय से अपेक्षित है कि वह", "हम भरोसा करते हैं और आशा करते हैं कि उच्च न्यायालय ऐसा करेगा/करेगी", जो शिष्टाचार और सम्मान तथा आदर द्वारा व्यक्त होते हैं जो सर्वोच्च न्यायालय का उच्च न्यायालयों के लिए है - और होना भी चाहिए। यह प्रथा एक परंपरा के रूप में विकसित और जमीनी स्तर पर हासिल हुई है। संभवतः एक या दो उदाहरणों को छोड़कर, जो भी परिहार्य रहे होंगे, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उच्च न्यायालय को अनादर दिखाए जाने या इसके विपरीत या इस न्यायालय द्वारा किसी भी उच्च न्यायालय द्वारा इसे दिखाए गए अनादर के किसी भी उदाहरण का संज्ञान लेने के लिए बुलाया जाने का कोई कारण नहीं आया है।

यू.एस. कोर्ट ऑफ अपीलस फॉर द डी.सी. सर्किट के मुख्य न्यायाधीश हैरी टी. एडवर्ड्स, आत्म-संयम पर जोर देते हैं क्योंकि यह समय के साथ न्यायालयों की संवैधानिक वैधता के निर्माण में मदद करता है क्योंकि न्यायिक आत्म-संयम न्यायिक स्वतंत्रता को उत्पन्न करने और संरक्षित करने दोनों में मदद करता है। न्यायाधीशों द्वारा न्यायाधीशों के साथ व्यवहार के संदर्भ में, वह 'सहकर्मि भावना' शब्द का उपयोग करते हैं और फिर वह 'सहकर्मि भावना' और स्वतंत्रता के बीच संबंध का उल्लेख इस प्रकार करते हैं - "..... न्यायिक अभ्यास का एक पहलू जो पिछले दशक में मेरे लिए तेजी से महत्वपूर्ण लग रहा है: सहकर्मि भावना का अभ्यास। सहकर्मि भावना से मेरा तात्पर्य न्यायाधीशों के बीच एक दृष्टिकोण से है जो कहता है, हम कुछ मौलिक मुद्दों पर असहमत हो सकते हैं, लेकिन हम सभी का कानून को सही करने में एक सामान्य हित और लक्ष्य है।..... हम, एक शब्द में, एक दूसरे के सहयोगी हैं। सहकर्मि भावना का एक दृष्टिकोण, व्यवहार में, इसका अर्थ है कि हम एक दूसरे के विचारों का सम्मान करते हैं, एक दूसरे को सुनते हैं, और, जहाँ संभव हो,

सहमति के क्षेत्रों की पहचान करने का लक्ष्य रखते हैं।.....सहकर्मी भावना का मतलब हालांकि यह है कि, जब मैं किसी अन्य न्यायाधीश से असहमत होता हूँ, तब भी मैं यह पहचानता हूँ कि हम एक सामान्य प्रयास का हिस्सा हैं, और हम में से प्रत्येक, लगभग हमेशा, कानून की आवश्यकता के बारे में अपने या उसके अपने दृष्टिकोण के अनुसार सद्भावना में कार्य कर रहा है।.....क्योंकि मैं खुद को अपने न्यायिक सहयोगियों के साथ एक सामान्य प्रयास में लगा हुआ देखता हूँ, इसलिए यह इस प्रकार है कि मेरे मन में पूरी न्यायपालिका के हित निहित रहते हैं।.....जब बहुत कम या कोई न्यायिक सहकर्मी भावना नहीं होती है, तो न्यायाधीशों के पास आत्म-संयम का प्रयोग करने के लिए कम प्रोत्साहन होता है।...सहकर्मी भावना न केवल प्रभावी ढंग से एक साथ काम करने के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि एक गहरे संरचनात्मक स्तर पर भी महत्वपूर्ण है। न्यायिक सहकर्मी भावना का एक दृष्टिकोण सैद्धांतिक और जिम्मेदार तरीके से व्यवहार करने के लिए न्यायाधीशों के प्रोत्साहनों को पुनर्बलित करने में मदद करता है। मुझे लगता है कि संस्थानों या व्यक्तियों के स्तर पर न्यायिक स्वतंत्रता की किसी भी चर्चा को इस सहकर्मी भावना के अभ्यास को ध्यान में रखना चाहिए।" (न्यायिक मानदंड: एक न्यायाधीश का दृष्टिकोण - वाशिंगटन विश्वविद्यालय स्कूल ऑफ लॉ देखें)।

हम अपनी इस चर्चा को ओलिवर वेंडेल होम्स जूनियर को उद्धृत करते हुए समाप्त करेंगे, जो अपने 60वें जन्मदिन के करीब थे, और इस बात से अनभिज्ञ थे कि उन्हें जल्द ही मैसाचुसेट्स के मुख्य न्यायाधीश के पद से संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय में उन्नत किया जाना था, उन्होंने कहा - "मैं खुद से पूछता हूँ, इस आधे जीवन को दिखाने के लिए क्या है जो बीत चुका है? मैं अपनी किताब में देखता हूँ जिसमें मैं पूर्ण न्यायालय के निर्णयों का एक आदेशिका रखता हूँ जिसे मुझे लिखना होता है, और लगभग एक हजार मामले पाता हूँ। एक हजार मामले, उनमें से कई तुच्छ या क्षणिक मामलों पर, लगभग आधा जीवन का प्रतिनिधित्व करने के लिए। एक हजार मामले जब किसी ने कानून द्वारा प्रस्तुत

किए गए हर प्रश्न पर गहराई से अध्ययन करना और अपनी बात कहना पसंद किया होगा... मैं अक्सर शेक्सपियर या नेपोलियन को खुद को संक्षेप में बताते हुए और सोचते हुए कल्पना करता हूँ: 'हाँ, मैंने 5,000 पंक्तियाँ शुद्ध सोने जैसी लिखी हैं और साथ में काफी भराव भी, जो आकाशगंगा को तारों को झकझोरने वाले शब्दों से ढक देता।' हम काफी भाग्यशाली हैं यदि हम अपने सर्वोत्तम का एक नमूना दे सकते हैं और यदि हम अपने दिल में यह महसूस कर सकते हैं कि यह उत्कृष्ट रूप से किया गया है।" (जे.एच. वूटन द्वारा उद्धृत और उद्धरण, "कानून में रचनात्मकता" (1972) 4 ऑस्ट्रेलियाई जे फॉरेंसिक साइंसेज, 107 पर)।

दो न्यायिक संस्थाओं के बीच सहयोग प्राप्त किया जा सकता है और तनाव से बचा जा सकता है यदि केवल न्यायिक सहकर्मी भावना सीखी जाती है, उत्कृष्टता प्रबल होती है और होम्स की विनम्रता शासन करती है।

संवैधानिक न्यायविद् एच.एम. सीरवाई अपने कार्य 'भारत का संवैधानिक कानून, चौथा संस्करण, रजत जयंती संस्करण, खंड 3, पृष्ठ 25.481' में हमारे संविधान के "मूल्यों" का संदर्भ देते हैं और कहते हैं - "बहुवचन में 'मूल्य' शब्द का अर्थ है किसी के सिद्धांत या मानक, किसी का निर्णय और जीवन में जो कुछ महत्वपूर्ण के रूप में उपलब्ध है"। हालाँकि, हमारे संविधान के प्रावधानों की व्याख्या उन विभिन्न मूल्यों के साथ उतार-चढ़ाव नहीं कर सकती है जिनमें विभिन्न न्यायाधीश विश्वास करते हैं। सीरवाई प्रख्यात संवैधानिक सलाहकार बी.एन. राव को उद्धृत करते हैं और कहते हैं - "एकमात्र मूल्य जो हमारे संविधान के अंतर्निहित कहे जा सकते हैं, वह मसौदा संविधान की प्रस्तावना में सर्वश्रेष्ठ रूप से व्यक्त किए गए हैं, जिसे सर बी.एन. राव, इसके प्रख्यात संवैधानिक सलाहकार, द्वारा संविधान सभा के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। वह इस प्रकार था: "हम, भारत के लोग, सामान्य हित को बढ़ावा देने की मांग करते हुए, यहाँ, अपने चुने हुए प्रतिनिधियों के माध्यम से, इस संविधान को अधिनियमित करते हैं, अपनाते हैं और स्वयं को प्रदान किया जाना करते हैं।" हमारी राय में, यह सामान्य हित की अवधारणा है जो कठिन समय में - संस्थानों के रूप में और

व्यक्तियों के रूप में - हमें मार्गदर्शन करनी चाहिए।

उपरोक्त रूप में कई प्राधिकारों और संदर्भों को उद्धृत करते समय हमें 'सर्वोच्च न्यायालय को श्रेष्ठ न्यायालय और उच्च न्यायालय को अधीनस्थ न्यायालय कहने' के रूप में गलत नहीं समझा जाना चाहिए; हम केवल यह कहना चाहते हैं कि क्षेत्राधिकार के रूप में, और पदानुक्रमित प्रणाली में, जहां तक अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग का संबंध है, निस्संदेह सर्वोच्च न्यायालय एक श्रेष्ठ मंच है और उच्च न्यायालय एक अधीनस्थ मंच है, इस अर्थ में कि बाद वाला पूर्व वाले के क्षेत्राधिकार के अधीन है, जिसे 'अपीलीय क्षेत्राधिकार' कहा जाता है।

अपीलीय क्षेत्राधिकार का अस्तित्व ही अधीनस्थ क्षेत्राधिकार को बाध्य करता है कि वह उच्च क्षेत्राधिकार को अपीलीय क्षेत्राधिकार का पूर्ण और प्रभावी ढंग से प्रयोग करने में सक्षम बनाने के लिए अपनी पूरी सहायता प्रदान किया जाना करे। अधीनस्थ मंच को श्रेष्ठ मंच को अपने मामले और कार्यवाहियों के अभिलेख को प्रमाणित करने के लिए बुलाया जा सकता है। श्रेष्ठ मंच को कुछ जानकारी की आवश्यकता हो सकती है जो अधीनस्थ मंच के कब्जे या ज्ञान में होने के कारण, केवल उसी के द्वारा उपलब्ध कराई जानी चाहिए। श्रेष्ठ मंच स्थगन आदेश या रोक आदेश जारी कर सकता है या अधीनस्थ मंच में कार्यवाहियों को निलंबित, तेज या विनियमित कर सकता है। अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग के दौरान या अंत में उच्च मंच द्वारा दिया गया कोई भी निर्देश अधीनस्थ मंच द्वारा अनुपालन किया जाना चाहिए, अन्यथा पदानुक्रम अर्थहीन हो जाता है।

हालांकि, सर्वोच्च न्यायालय पर अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत प्रदत्त क्षेत्राधिकार बहुत व्यापक है और कोई भी तकनीकीता ऐसे क्षेत्राधिकार के प्रभावी प्रयोग को रोक या बाधित नहीं कर सकती है, फिर भी विवेक और स्व-नियंत्रित अनुशासन के नियम के रूप में श्रेष्ठ मंच पहली बार में अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इनकार कर देता है यदि उठाई गई शिकायत ऐसा करने के लिए सक्षम किसी भी अधीनस्थ मंच द्वारा ध्यान रखे जाने में सक्षम

हैं।

कुछ स्वर्णिम सिद्धांतों, मौलिक और बुनियादी को याद करने और संक्षेप में पुनरावृत्ति करने के बाद, अब हम वर्तमान मामले के तथ्यों पर वापस आते हैं।

आखिरकार, इस न्यायालय द्वारा क्या किया गया था? 28.10.2002 को, इस न्यायालय ने आत्म-नियंत्रण का प्रयोग किया और एसएलपी पर विचार करने से इनकार कर दिया, इस पर एक राय बनाई कि उसे क्यों हस्तक्षेप करना चाहिए और उच्च न्यायालय को अपनी संवैधानिक क्षेत्राधिकार का स्वतंत्र रूप से प्रयोग करने के लिए खुला क्यों नहीं छोड़ना चाहिए और वह भी वर्तमान मामले में जनहित में। हालाँकि, तब के याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाई गई शिकायत को जल्दी सुना जाना आवश्यक था; ऐसी राय बनाना और परिणामी निर्देश जारी करना संविधान के अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत इस न्यायालय की क्षमता के भीतर निस्संदेह था। बाद में, 3.11.2003 का आदेश शपथ पत्र द्वारा समर्थित याचिका पर पारित किया गया, जिसमें तथ्यों और तारीखों का उल्लेख किया गया था, जिसके कारण इसे दायर करने का अवसर उत्पन्न हुआ, जो कि यदि शिकायत नहीं थी, तो कम से कम एक शिकायत थी कि उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 136 द्वारा प्रदत्त अपने क्षेत्राधिकार के प्रयोग में इस न्यायालय द्वारा पारित 28.10.2002 के आदेश का अनुपालन करने में विफल रहा था। न्यायालय ने महसूस किया कि आदेश का अनुपालन किया जाना चाहिए था। न्यायालय ने इस धारणा के साथ आगे बढ़ा कि साधारण क्रम में वह यह सोचने के लिए राजी नहीं होगा, विश्वास करना तो दूर की बात है, कि उच्च न्यायालय इस न्यायालय के आदेश का अनुपालन नहीं कर रहा था, यदि आदेश को उसके ध्यान में लाया गया था। इसलिए, तथ्यों का पता लगाने के लिए इस न्यायालय ने एक जवाब मांगा। इस न्यायालय के महानिबंधक ने जानकारी मांगते हुए उच्च न्यायालय के महानिबंधक को एक संचार संबोधित किया। संचार को प्रशासनिक पक्ष पर निस्तारित किया जाना चाहिए था और उच्च न्यायालय के महानिबंधक द्वारा जवाब दिया जाना चाहिए था, बस सही तथ्यात्मक स्थिति के

बारे में इस न्यायालय को सूचित करना था। यदि उच्च न्यायालय के अंत में कोई त्रुटि, कोई चूक और गैर-अनुपालन जैसा कुछ नहीं था, तो उस संबंध में एक संचार में संक्षिप्त आवश्यक तथ्यों के साथ उच्च न्यायालय के महानिबंधक द्वारा इस न्यायालय के महानिबंधक को एक मूल्यांकन, जिसे बाद वाला न्यायिक पक्ष पर इस न्यायालय के विचार के लिए रखता, पर्याप्त था। ऐसी प्रक्रिया का पालन अक्सर किया जाता है और किसी ने भी इस प्रथा पर अपवाद नहीं लिया है सिवाय उस एकल उदाहरण के जिससे हम अनिच्छा से निपट रहे हैं।

हम इस मामले में उच्च न्यायालय की खंडपीठ के मन में उत्पन्न गलत धारणा पर केवल खेद व्यक्त कर सकते हैं। इस न्यायालय द्वारा उच्च न्यायालय के महानिबंधक को संबोधित एक अहानिकारक संचार के कारण उच्च न्यायालय को वादी के दर्जे तक कम नहीं किया गया था और न ही उच्च न्यायालय को पक्षकार के रूप में शामिल किया गया था और न ही उच्च न्यायालय को एक संस्था के रूप में और एक अभिलेख न्यायालय के रूप में एक स्पष्टीकरण देने या जवाब देने के लिए बुलाया गया था। उच्च न्यायालय को अपने स्वयं के अधिवक्ता को नियुक्त करने की आवश्यकता कैसे उत्पन्न होती है? ये सभी धारणाएं, यदि उत्पन्न हुई हैं, तो गलतफहमी और भ्रम या 'उत्साह' का परिणाम हैं जैसा कि बेंजामिन कार्डोजो इसे कहते हैं। यह स्पष्ट है कि *असत्य प्रस्तुतीकरण या सत्य के दमन* में शामिल होकर इस न्यायालय का समीपगमन करने वाला कोई भी व्यक्ति परिणाम भोगेगा, लेकिन यह केवल तथ्यों का पता लगाए जाने के बाद होगा। साधारणतया, शपथ पत्र द्वारा समर्थित और तथ्यों का विवरण देने वाली इस न्यायालय के समक्ष दायर याचिका में किए गए अभिकथनों पर अविश्वास करने के लिए क्या था? फिर भी, न्यायालय ने याचिका पर जल्दबाजी में कार्य नहीं किया और कोई एकतरफा आदेश पारित नहीं किया। देखभाल, सावधानी और विवेक के साथ कार्य करते हुए - और स्पष्ट रूप से उच्च न्यायालय के प्रति सम्मान के साथ - उसने अपने हाथ पीछे रखे और तथ्यों का पता लगाने की कोशिश की। उच्च न्यायालय के लिए नाराज और परेशान महसूस करने का कोई कारण नहीं था, घबराए महसूस करने और जिस

तरह से उसने दुर्भाग्य से किया है, उस तरह से प्रतिक्रिया करने का तो सवाल ही नहीं उठता। उच्च न्यायालय को यह पता होना चाहिए था कि दोनों आदेश, 28.10.2002 का आदेश और साथ ही 3.11.2003 का आदेश भारत के माननीय मुख्य न्यायाधीश, भारतीय न्यायपालिका के पिता तुल्य की अध्यक्षता वाली पीठों द्वारा पारित किए गए थे। हमारी सुविचारित राय में, उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दिनांक 3.12.2003 को पारित आदेश दुर्भाग्यपूर्ण है। हम भी वर्तमान आदेश पारित करते हुए विशेष रूप से प्रसन्न नहीं हैं। हमारी असुविधा और बढ़ जाती है जब हम देखते हैं कि दिनांक 3.12.2003 का आदेश पारित करने वाली उच्च न्यायालय की खंडपीठ का अध्यक्ष भी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश ही था। यह सब टाला जा सकता था और टाला जाना चाहिए था, बिना किसी छोटी-सी बात को पहाड़ बनाने के।

जो भी हो, हमें देश के सर्वोच्च न्यायालय के रूप में इस महान संस्था की गरिमा को बनाए रखना होगा और उच्च न्यायालय की एक भ्रामक धारणा को ठीक करना होगा, कि इस न्यायालय के किसी भी आदेश का इरादा एक संवैधानिक न्यायालय या अभिलेख न्यायालय के रूप में उच्च न्यायालय के दर्जे को कमजोर करना था। उच्च न्यायालय का ऐसा आदेश, जिसने न तो इस न्यायालय और न ही उच्च न्यायालय को कोई भला किया है, हमारे ध्यान में लाए जाने के बाद, हम संवैधानिक रूप से बाध्य हैं कि हम अपनी आँखें न झपकाएँ बल्कि कार्य करें और इसलिए हम करते हैं। हम निर्देश देते हैं कि उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित 3.12.2003 के आदेश से न्यायालय के पहले भाग में उद्धृत और पुनः प्रस्तुत किए गए सभी अंशों को इस न्यायालय के अपमानजनक, निंदात्मक, पूरी तरह से अवांछित और इस न्यायालय की कार्यवाहियों पर टिप्पणी करने वाला होने के कारण अभिलेखागार से हटा दिया जाए और काट दिया जाए, जिसे उच्च न्यायालय को नहीं करना चाहिए था। ऐसे टिप्पणियों को एक अभिलेख न्यायालय के रूप में उच्च न्यायालय के अभिलेख पर बनाए नहीं रखा जाना चाहिए। आदेश का अक्षरशः और भाव से पालन किया जाएगा और अनुपालन के

सूचना-पत्र उच्च न्यायालय के महानिबंधक द्वारा इस न्यायालय के महानिबंधक को दी जाएगी। हम इस अच्छी आशा के साथ विदाई लेते हैं कि इस न्यायालय को ऐसा आदेश देने का कोई अन्य अवसर नहीं मिलेगा।

वी.एस.एस.

याचिका का निस्तारण किया गया।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।